वेंकट - पार्वतीश्वर कवि
— व्यक्तित्व व कृतित्व

(एम. ए. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध)

—: प्रस्तुत-कर्त्री :—

तेकुमल्ल. ललिता

आंध्र-विश्व-विद्यालय,

वाल्टेर

1971

" साहित्याचार्य "
प्रोफेसर. जी. सुंदररेड्डी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

—: निर्देशक :—
" साहित्यरत्न"
डा. कर्ण. राजशेषगिरिराव,
एम. ए. (संस्कृत), एम. ए. (हिन्दी),
एम. ए. (तेलुगु), पी. एच. डी.,
रीडर, हिन्दी विभाग ।

वेंकट - पार्वतीश्वर कवि
- व्यक्तित्व व कृतित्व

(एम. ए. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध)

—: प्रस्तुत-कर्त्री :—

तेकुमल्ल. ललिता

आंध्र-विश्व-विद्यालय,

वाल्टेर

1971

" साहित्याचार्य "

प्रोफेसर. जी. सुंदररेड्डी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

—: निर्देशक :—

" साहित्यरत्न"

डा. कर्ण. राजशेषगिरिराव,

एम. ए. (संस्कृत), एम. ए. (हिन्दी),

एम. ए. (तेलुगु), पी. एच. डी.,

रीडर, हिन्दी विभाग ।

वैंकट पार्वतीश्वर कवि : व्यक्तित्व व कृतित्व

(एम · ए · हिन्दी उत्तरार्ध परीक्षा के चतुर्थ प्रश्न-पत्र के विकल्प में प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध)

: प्रस्तुत-कर्त्री :—

तेकुमल्ल0 ललिता

आन्ध्र-विश्वविद्यालय, वाल्टेर ·

1971

'साहित्याचार्य'

प्रोफेसर0 जी · सुंदररेड्डी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

आन्ध्र विश्वविद्यालय।

—: निर्देशक :—

'साहित्यरत्न'

डा0 कर्ण · राजशेषगिरिराव, एम · ए ·(संस्कृत), एम · ए ·(हिन्दी), एम · ए ·(तेलुगु), पी · एच · डी ·,

रीडर, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेर।

निवेदन

आधुनिक काव्य परंपरा में युगल-कवियों के परंपरा प्रचलित हुई है। उन में 'तिरुपति वेंकट कवियुगल' उल्लेखनीय हैं। तेलुगु में युगल कवियों को जंटकवि कहते हैं। इस परंपरा में सर्वश्री वेंकट रामकृष्ण-कविद्वय, वेंकट पार्वतीश कवियुगल एवं कादूरि-पिंगल कवियुगल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस लघु-शोध-प्रबंध में वेंकट - पार्वतीश कवि युगल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया गया है। प्रथम कवि बालांत्रपु वेंकटराव नाम से अभिहित हैं और द्वितीय कवि ओलेटि पार्वतीश नाम से व्यवहृत हैं। लेकिन ये वेंकट-पार्वतीश कवि के नाम से व्यवहृत हैं। लेकिन ये वेंकट पार्वतीश कवि के नाम से साहित्य जगत् में प्रख्यात हुए हैं। काकिनाडा काकिनाडा में स्थापित आन्ध्र-प्रचारिणी ग्रंथ-माला के द्वारा इनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और धीरे-धीरे इनकी कीर्ति चारों ओर फैली। विद्वानों का अनुमान है कि आन्ध्र में नयी-कविता-परंपरा का श्रीगणेश करने का श्रेय इन्हीं को है। एक प्रकार से आधुनिक तेलुगु काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी प्रसिद्ध-कृति 'एकांतसेवा' आन्ध्र 'गीतांजलि' है।

यह लघु-शोध प्रबंध अध्ययन की सुविधा के लिए सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में परिचय के अंतर्गत आधुनिक तेलुगु काव्यधारा की संक्षिप्त रूपरेखा अंकित की गयी है। द्वितीय अध्याय में वेंकट पार्वतीश कविद्वय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में मुख्य कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में भारतीय धर्म साधना में भक्ति-भावना का विशिष्ट स्थान

निर्धारित है। पंचम अध्याय में रवींद्र कृत गीतांजलि एवं कविद्वय विरचित एकांत-सेवा का तुलनात्मक अध्ययन विशेष रूप से किया गया है। षष्ट अध्याय में भावपक्ष एवं कलापक्ष का संक्षिप्त विवेचन है। सप्तम अध्याय में निष्कर्ष के रूप में कृतियों की साहित्यक सेवा का मूल्यांकन है। परिशिष्ट (अ) में कुछ गीतों का हिन्दी में अनुवाद संलग्न है। (आ) में सहायक ग्रंथ-सूची दी गयी है।

प्रोफेसर0 जी॰ सुंदररेड्डी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) ने इस विषय पर शोध-कार्य करने की अपनी सम्मति देने की जो कृपा की है और अपने आशीर्वाद से प्रोत्साहन दिया है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करती हूँ। डा0 कर्ण॰ राजशेषगिरि रावजी के तत्वावधान एवं मार्ग-निर्देशन में यह शोध-कार्य संपन्न हुआ है। उनके प्रति मैं अपनी आभारी व्यक्त करती हूँ। आशा है कि सहृदय मेरे इस प्रयास का हृदयपूर्वक स्वागत कर मुझे आशीर्वाद देकर अधिक प्रोत्साहन प्रदान करेंगे।

(लेखुमल्ल॰ ललिता)

— : विषय-सूची : —

* * *

१ · ० · ०
आधुनिक-तेलुगु-काव्य-धारा को
संक्षिप्त—रूपरेखा

1 · 0 · 0

आधुनिक-तेलुगु काव्यधारा की संक्षिप्त रूपरेखा

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में प्रत्येक काल में परिवर्तन होते रहते हैं। और ये ही परिवर्तन कालक्रम में इतिहास का रूप धारण कर लेते हैं। किसी भी देश का साहित्य समाज में होनेवाले परिवर्तनों से स्वयं ही परिवर्तित होता रहता है। साहित्य में होनेवाले ये परिवर्तन साहित्य के इतिहास को जन्म देते हैं। तेलुगु कविता भी वास्तव में उसी युग से रूप बदलता आया है जिस क्रम से समाज का रूप बदलता आया है। श्री वीरेशलिंगम पंतुलु एवं नारायणरावजी ने इसी आधार पर तेलुगु साहित्य के संपूर्ण इतिहास को चार कालों में विभाजित किया है।

1) पुराण काल 2) प्रबंध काल 3) क्षीण काल 4) आधुनिक काल।

आधुनिक तेलुगु कविता की प्रवृत्तियों पर विवेचन करने के पूर्व प्राचीन तेलुगु कविता की गति-विधि पर संक्षेप में प्रकाश डालना समीचीन होगा।

पुराण काल :— (ई 11 वीं शताब्दी से 15 वीं के पूर्वार्ध तक)

इस काल की प्रमुख समस्या राजनैतिक न होकर धार्मिक थी। कई शताब्दियों से दक्षिण में जैन और बौद्ध अपने अड्डे जमाकर बैठे थे। वे वैदिक धर्म का पूर्ण रूप से अंत करने पर तुले हुए थे। परिणामतः इनके साथ वैदिक धर्म का समय-समय पर संघर्ष अनिवार्य होता रहता था। लेकिन ई 7-8 वीं शताब्दियों में अवतरित भट्ट तथा शंकराचार्य ने अपनी अप्रतिहत प्रतिभा से उन दोनों धर्मों का जड सहित उन्मूलन कर वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। वैदिक धर्म फलतः पुनः विकसित होने लगा।

ई० 11 वीं शताब्दी में चालुक्य राज राजराज नरेंद्र इसी मार्ग के लिए कटिबद्ध हुए थे। उनकी पावन प्रेरणा से जप-होम तत्पर महाकवि नन्नय भट्टारक ने वैदिक धर्म के पुनः पुनरुत्थान के लिए संस्कृत महाभारत का तेलुगु में स्वतंत्र अनुवाद प्रथम अढाई पर्वों तक किया।

प्राप्त शिलालेखों से पता चलता है कि तेलुगु में पद्य रचना 7 वीं शताब्दी से ही होने लगी थी। लेकिन प्रथम प्रबंध काल के प्रणेता नन्नय भट्टारक नहीं थे। अतएव वे आदिकवि कहलाये।

उनके पश्चात् तिक्कन सोमयाजी एवं एर्राप्रगडा ने 'आन्ध्र महाभारतमु' को अंत तक लिखकर सर्वांग सुंदर एवं संपन्न बनाया। इस काल के अन्य पुरुष कवियों में नन्ने चोडुडु, नाचन सोमना, श्रीनाथुडु, पोतना आदि उल्लेखनीय हैं। धार्मिक पुराणों का काव्यात्मक अनुवाद, काव्य शास्त्र के नियमों का पालन एवं प्रबंध काव्य-रीति का प्रारंभिक सौष्टव इस काल के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

प्रबंध काल :— (ई० 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 17 वीं शताब्दी के अंत तक)

तल्लिकोटा के युद्ध में क्रूर काल से पराजित होकर विजयनगर साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस से आन्ध्र जनता की आशाकिरणें अंधकार में विलीन हो गयीं। इस समय सुदूर दक्षिण में छोटे मोटे राज्य संचालन करनेवाले आन्ध्र साम्राज्य के सामंत राज्य स्वतंत्र हो गये। उनका सहारा पाकर तेलुगु कविता तंजाऊर, मधुरा आदि मुख्य स्थानों में अपने गत वैभवों को बटोरने लगी। सत्वहीन आन्ध्र जाति में कामुकता से विपुल उस काल की कविता श्रृंगार नायिका जैसी बन बैठी। वासना-पूर्ण पद गाया जाता था और वेश्याओं की मंजु-मंजीर पद ध्वनियाँ राज-दरबारों में अलंकृत होने लगीं। स्वधर्म पालन से उदासित एवं वासनाओं में तल्लीन वे राजा काव्यों के नायक बने। चेमकूर वेंकटकवि से विरचित 'विजयविलासमु', कवयित्रि

मुद्दुपळनि से रचित 'राधिकासान्त्वनमु' इस काल के विशिष्ट काव्य हैं। वात्सल्यमयी शृंगार का उत्कृष्ट वर्णन, शब्द सौंदर्य, नायिका एवं धार्मिक भावनाओं का अभाव इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

आधुनिक काल :—

ई॰ 18 वीं शताब्दी से भारत में नयी राजनैतिक चेतना जागृत हुई। फलतः विदेशी शासन के उन्मूलन की ओर स्वदेशी शासन की प्रतिष्ठा की तीव्र अभिलाषा कुछ नेताओं में उद्दीप्त हुई। उन्होंने भारत की राजनैतिक स्वाधीनता पर जोर दिया। लेकिन सर्वसाधारण जनता या तो इस से अनभिज्ञ थी या उदासीन। उनकी मानसिक स्थिति में परिवर्तन लाना नितांत अनिवार्य प्रतीत हुआ। अतः देश के उन महानुभावों ने अपनी सामाजिक उन्नति, सभ्यता की विशिष्टता, सांस्कृतिक गरिमा एवं भाषा साहित्य की महानता के बारे में संदेश देकर सुषुप्त जन-मानस को जागृत करने का स्तुत्य प्रयास किया। इससे विराट राष्ट्रीय भावना उदय हुई।

भारत की यह नवीन जागृति सन् 1885 ई से स्थापित इंडियन नेशनल कांग्रेस में हुई। यह वास्तव में भारत वासियों का प्रप्रथम राजनैतिक जागरण था। इस से हमें अपने यथार्थ रूप का परिचय दिया। परिणाम स्वरूप देश और जाति, साहित्य और समाज, धर्म और दर्शन के उन्नयन में प्रबल प्रयत्न होने लगे।

स्वामी दयानंद ने प्राचीन हिंदू धर्म के विशुद्ध रूप को आर्य समाज के नाम पर प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानंद ने आध्यात्मिक संदेश देकर भारत की श्रेष्टता सिद्ध की। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से भारतीय राजनीति की विशिष्टता का समर्थन किया। राजाराम मोहनराय ने समाज की कुरीतियों का खंडन कर जनता में नैतिकता का मूल्य बढाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। सन् 1205 ई॰ में बंग भंग हुआ, जिस से सारे देश में असंतोष की ज्वाला फैली जो स्वदेशी

आंदोलन के नाम से प्रज्वलित होने लगी। इस से राष्ट्रीय भावना शक्तिशाली बनी। इसके पश्चात् सन् 1921 ई में महात्मा गाँधीजी के महत्वपूर्ण सत्याग्रह का आंदोलन आरंभ हुआ जिस से उस समय तक अर्ध चेतना में ऊँघती हुई जनता एक बार चौंक कर जग पडी। इस के द्वारा समाज के साथ साहित्य ने भी नया मोड ले लिया जिस में राष्ट्रीय साहित्य की सृष्टि में आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

उत्तर भारत में स्वामी दयानंद एवं राजा राममोहनराय ने जो काम किया वही काम आन्ध्र में श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु ने किया। श्री पंतुलु ने ई॰ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में थे। उन्होंने हिन्दू धर्म की सांप्रदायिक विषमताओं का खंडन कर एकेश्वरवादी और सामाजिक व्यवस्था को सु-व्यवस्थित करने का प्रबल प्रयत्न करते हुए स्त्री-समाज के उद्धार पर जोर दिया। उन्होंने सामाजिक सुधार के साथ तेलुगु साहित्य को सर्वांग संपन्न बनाया। श्री वीरेश लिंगम पंतुलु जिज्ञासु थे, कवि थे, पंडित थे, आलोचक थे, दार्शनिक थे, सुधारक थे, परिश्रमी और हृदय के बडे वीर थे। वे आन्ध्र जाति के नवोत्थान में संस्मरणीय व्यक्ति थे।

प्रथम योरोपीय महायुद्ध में भाग लेकर वापस आने पर भारत के लोगों की आँखें खुल गयी और जनता में विश्वास जागृत हुआ। साथ ही यह युग भी दूर होने लगा कि हमारी पराधीनता का कारण शारीरक शक्ति हीनता ही थी। शनैः शनैः महायुद्ध के परिणाम स्वरूप उनका ध्यान फ्रांस, जर्मनी और रूस की ओर आकृष्ट हुआ। वहाँ के ग्रंथों में वहाँ की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट देखने में आने लगी। ऐसे साहित्यों के संपर्क से हमारे साहित्य में जीवन के प्रश्नों को अधिक महत्व दिया जाने लगा। जिस से जीवन और साहित्य अधिक मंजुल समन्वय से चले। विदेशी साहित्यों से प्रभावित हमारे लेखक अपनी रचनाओं में किसान, मजदूर, गाँव आदि को अधिक

अधिक महत्व देने लगे। इन सब का कारण हमारी राजनैतिक परिस्थितियाँ ही थीं। फ्रांसीसी साहित्य की ध्वन्यात्मक कला, अंग्रेजी साहित्य की प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता तेलुगु के आधुनिक कवियों के बहुत ही महत्वपूर्ण प्रतीत हुई। ये विशेषतायें पहले बंग साहित्य से आती रहीं। लेकिन बाद को अंग्रेजी साहित्य विस्तृत प्रचार होने से इनका प्रभाव हमारे साहित्य पर सीधे पडने लगा। इस समय के साहित्य ने बुद्धि-वाद को प्रमुख स्थान दिया।

प्राचीन रूढिगत परंपरा का विरोध करना आधुनिक काल के काव्य धारा का उद्देश्य रहा है। तेलुगु की प्राचीनकालीन कविता जो सामंत राजाओं के आश्रय में पली। अधिकांश रूप में अश्लील श्रृंगार के वर्णन तक ही सीमित थी और छंद, अलंकार और अन्य कवि अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने में अपनी कविता की इतिश्री समझते थे। ई वीं शताब्दी के अंतिम काल में एक ओर राज्यों का लोप होने लगा तो दूसरी ओर मुद्रणायंत्र का प्रचार जोरों से हुआ। इस से कविता शिक्षित जनता के बीच में आकर जीवन और प्रकृति की विविध रूपता ग्रहण करने लगी।

तेलुगु साहित्य में आधुनिक युग का श्रीगणेश सन् 1900 से माना जाता है। इस युग में तथा इसके पूर्व देश में कई राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हुई जिनका प्रभाव तेलुगु साहित्य पर प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों रूपों में पडा है। उन प्रभावों के कारण तेलुगु कविता की काया पलट-सी गयी। क्या भाषा, क्या व्यंजना, क्या भाव सभी में नवीनता का दर्शन होने लगा।

इस नवीन कविता को सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं :—

1) प्रथम युग (1900 से 1920 ई॰ तक)

2) द्वितीय युग (1920 से 1930 ई॰ तक)

3) तृतीय युग (1930 ई॰ से आज तक)

प्रथम युग :—

बीसवीं सदी के पूर्व भाग में ही आधुनिक युग की कविता में नवीनता के दर्शन होने लगते हैं। जो कविता इस के पूर्व राजाश्रित थी, वह गाँव-गाँव और नगर-नगर में सुनी जाने लगी। 'तिरुपति वेंकटेश्वर कवुलु' नामक दो कविरत्न ऐसे थे जिन्होंने तेलुगु कविता को प्राचीन बंधनों से मुक्त कर साधारण जनता के हृदयों पहुंचाया। ये कविद्वय संस्कृत और तेलुगु के प्रकांड पंडित थे। ये बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। भाषा उनकी चेरी थी तथा भाव अनुचर। कविता करना उनके लिए बाये हाथ का खेल था। उनकी कविता की विशेषता यह थी कि भाषा व भाव दोनों सरस एवं सरल थे। प्राचीन और पुरानी शैली की गंगा-यमुना प्रयाग हम इनकी कविता में पाते हैं। इन के काव्यों में 'शतावधान सार' काव्य कुसुमावली एवं बुद्ध-चरित्र आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। 'नानाराज संदर्शन' प्रशंसात्मक कविताओं का संकलन है। फिर भी तेलुगु साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। राजाओं के दरबार में पहुंचकर भी ये ईश्वर-स्तुति को अधिक महत्व देते थे। 'बुद्ध चरित्र' में भगवान बुद्ध के जीवन की सभी विशेषताओं को अंकित करने का प्रयास किया गया है। अंतर-द्वंद्व का अच्छा चित्रण हुआ है। उनकी करुणा और उदारता पाठक के हृदय द्रवित कर देती है। यशोधरा के परित्याग करते समय महानिष्क्रमण के लिए प्रस्तुत सिद्धार्थ की मानसिक स्थिति का चित्रण बहुत कम कवियों ने किया है। 'देवी भागवत' का एक स्वतंत्र अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

जब तिरुपति शास्त्री का देहांत हो गया तो वेंकट कवि ने अनेक काव्यों की रचना की। मद्रास सरकार ने इन्हें तेलुगु के राजकवि का सम्मान प्रदान किया। ये तेलुगु के प्रथम कवि थे जिसे इस पद पर मनोनीत किया गया है।

तिरुपति कवि महाकवि होने के साथ साथ अपने आप में एक महान संस्था थे।

इन दोनों कवियों की तरह कुछ अन्य कवियों ने भी जोडी बनायी। कोप्परपु कविद्वय और वैंकट रामकृष्ण कवियों ने स्थान-स्थान पर अवधान किये। पर तिरुपति कविद्वय को जो यश प्राप्त हुआ, वह नहीं मिल सका। उसका सब से बडा कारण यह था कि तिरुपति कवि जन्मजात और प्रतिभाशाली कवि थे। आगे चलकर इनके जिन शिष्यों ने विशेष ख्याति प्राप्त की उन में वेलूरि शिवराम शास्त्री, अब्बूरि सुब्रह्मण्य शास्त्री, वैंकट स्वामी आदि उल्लेखनीय हैं।

अब्बूरि सुब्रह्मण्य शास्त्री :—

तिरुपति वैंकट कवि की परंपरा को गौरवान्वित करनेवाले शिष्यों में श्री शास्त्री जी श्रेष्टतम माने जाते हैं। अपने गुरुओं की भांति ये भी संस्कृत साहित्य, तेलुगु साहित्य, व्याकरण, शास्त्र आदि के अच्छे विद्वान थे।

इन्होंने कई स्थानों पर अवधान किया। इन्होंने 'आन्ध्रध्वनि' 'तेलुगु काव्या-दर्शमु' नामक पद्य बद्ध अलंकार ग्रंथ लिखे जो मौलिक न होकर अन्य अलंकार ग्रंथों के छायानुवाद है। देवबल नामक खंड काव्य भक्ति संबंधित है और 'आन्ध्र-भाषा विकास' में तत्कालीन सरकार द्वारा तेलुगु भाषा को जो अपमान जनक स्थिति रही, उसका करुण चित्रण किया गया है।

वेलूरि शिवराम शास्त्री :—

तिरुपति वैंकटकवि के शिष्यों में शास्त्रीजी का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। इनका काव्य जीवन अवधानों से आरंभ होता है। ' ' नामक काव्य आपकी श्रेष्ट रचना मानी जाती है। यह पाँच आश्वासों का काव्य है। 'मणि मेखला', कथलु-गाथलु, विडालोपाख्यान इनके अन्य काव्य हैं। आधुनिक तेलुगु साहित्य में काल्पनिक कथाओं के आधार पर कविता लिखने में इन्हें बहुत सफलता मिली है।

वैंकटस्वामी :—

ये कांचीपुरम के पच्चायप्पा विद्यालय में तेलुगु के अध्यापक थे। तेलुगु में तिरुमंग अळ्वार चरित्र, और हरोपरकात विलासम नामक दो काव्यों की रचना की।

शतावधानी कवियों में राजशेखर और गडियार वैंकटशेषय्याजी का स्थान भी बहुत ऊँचा माना जाता है। राजशेखर ने शिवभारतम्××लिखा राजा प्रतापसिंह चरित्र लिखा। गडियारँ वैंकटशास्त्रीजी ने शिवभारतम लिखा। इस में आठ आश्वास हैं। लगभग 2500 पद हैं। कैकेयी सौशील्यमु, हैमवती विलासमु, उषाहरणमु, रुक्मिणी विजयमु, पुरुषोत्तम वैभवमु आदि अन्य रचनाएँ हैं।

तेलुगु की आधुनिक कविता में देश भक्ति दो धाराओं में निकल पड़ी। पहली धारा राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है और दूसरी धारा अलग आन्ध्र राज्य के आंदोलन के भावों का मधुर स्रोत है। वह काल एक प्रकार से जागृति का काल था। बंगाल के विपिन चंद्रपाल के भ्रमण से लोगों में जागृति आई। उनके भाषणों से प्रभावित हो कर लक्ष्मीनरसिंहमजी ने लिखा —

भरत भूमि यह कामधेनु है

हिन्दू बछड़ों का दूध से भर

श्वेत जाति के ग्वालबाल ये

दुहते मुँह बाँध कस दे कर।

— तेलुगु की आधुनिक कविता में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम प्रचारात्मक पद्य यही माना जाता है। इसके उपरांत गुरजाड अप्पाराव का गीत स्मरणीय है।

"देशमंटे मट्टि्ट कादोय - - - - - - साय पडवोय"

— अर्थात् देश का मतलब मिट्टी ही भरी, देश का मतलब उस के निवासियों से है। तुम ऐसी डींग मारने की आवश्यकता भी न होगी। अतः तुम अपने लाभ का ख्याल

थोडा सा काम करके दूसरों को भी सहायता करो।

इनके 'मुत्याल सरालु' और 'नीलगिरि पाटलु' नामक गीतों का संग्रह बहुत लोकप्रिय है। इस धारा को आगे बढनेवालों में रायप्रोलु सुब्बारावजी का एक विशेष रूप से किया जाता है। उनका सुप्रसिद्ध देशभक्ति गीत सारे आन्ध्र में गूँज उठा —

किसी देश में चला करो रे

जहाँ कहाँ भी पाँव धरो रे

मातृ भूमि की कीर्ति बढाओ

निज जाति की स्फूर्ति चढाओ।।

—— इस गीत अन्य चरणों में कवि मातृदेश के प्राचीन वैभव का मनोहर वर्णन किया।

रायप्रोलु सुब्बाराव संस्कृत, अंग्रेजी, और तेलुगु साहित्य के अच्छे ज्ञाता है। इन्हें शांतिनिकेतन में अध्ययन करने का सौभाग्य मिला। रवींद्र के व्यक्तित्व का निकट परिचय प्राप्त हुआ।

इनकी प्रथम रचना 'ललिता' नामक खंड काव्य है। यह गोल्डस्मित के 'हेमलेट' के आधार पर रची गयी है। तेलुगु का यह पहला काव्य है जिस में कथोपकथन, संवाद तथा कथा आदि के स्थान पर प्रकृति वर्णन को प्रधानता मिली। कवि को प्रकृति के अनेक दृश्यों का अंकन बडी कुशलता से किया है। ललिता के कारण समूचे आन्ध्र में आपकी कीर्ति फैली है। कवि ने प्रकृति को रम्य रूपों में चित्रित किया।

इसकी रचना इनकी 'तृणकंकणमु' है। इसकी शैली बडी प्रौढ है। आधुनिक काव्य धारा में 'तृणकंकणमु' आदि काव्य माना जाता है। 'जडकुच्चुलु' और 'तेलुगु तोट' नामक दो काव्य आन्ध्र प्रदेश से संबंधित है। इसके बाद अब्बूरि रामकृष्णाराव ने 'मल्लिकांता', 'नदी सुंदरी' उल्लेखनीय हैं। तल्ला वज्झल शिवशंकर शास्त्री ने

'हृदयेश्वरी', 'आवेदना' आदि लिखा।

आन्ध्र राष्ट्र का आंदोलन :—

तेलुगु में राष्ट्र शब्द राज्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आन्ध्र के लोग में अपने प्राचीन वैभव का अभिमान अधिक है जो रायप्रोलु के 'मेरी जाति' मेरा देश, मेरी-भाषा, केवल पद में प्रयुक्त होता है। लेकिन इन को बहुत समय तक अलग प्रादेशिक राज्य प्राप्त नहीं हुआ। इनके लिए ई॰ 1910 से आंदोलन आरंभ हुआ जिस से प्रेरित होकर कई कवियों ने ओजपूर्ण कविताएँ लिखी। आंध्रों के प्राचीन वैभव और अपार वीरधर्म इनको अत्यंत आकर्षित करने लगे। इस शाखा की कविता में आन्ध्र जाति का विकास, संस्कृति, सभ्यता का स्वरूप विपुलीकरण के रूप में वर्णित है। रायप्रोलु सुब्बाराव, कडमूरि वेंकटनरसय्या, तुम्मल सीतारामम्मूर्ति चौधरी आदि कवियों ने अपने काव्यों में पूर्ण रूप से पुष्ट किया है।

द्वितीय युग :—

इस युग में नवीन धारा की कविता पूर्ण रूप से प्रौढ बन गयी है। इस युग के कवियों पर बंगला, अंग्रेजी साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पडा। कवियों ने रहस्यवाद, छायावाद, मानववाद, सौंदर्यवाद आदि वादों में अपनी रचना की। इनकी कविता में मनुष्यों के विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति, भावुकता, संगीतात्मकता तथा अलंकारों की प्रधानता रही। नाद सौंदर्य के विशेष पक्षपाती होने के कारण इनके काव्य प्रायः गेय रहे।

यद्यपि इस युग के मुख्य कवियों की काव्यवस्तु राष्ट्रीय विचार धारा रही। फिर भी कुछ कवियों ने सौंदर्य-प्रेम तथा वस्तु को अपने काव्य को आधार शिला बनाया। इन कवियों ने प्रकृति के अंतर से अपने अपने अंतर को मिलाकर देखा और प्रकृति में

आध्यात्मिकता अनुभव किये जैसा कि हिंदी के साहित्य में पंतजी ने किया।

इस युग के कवियों में देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री एक प्रसिद्ध लेखक, कवि और समालोचक थे। भावुकवादी कवि स्वभावतः साहित्य के क्षेत्र में विद्रोही सी सिद्ध हुआ है। शास्त्रीजी ने काव्य के किसी भी रूढि को ग्रहण नहीं किया। भाव, भाषा, कविता के सभी उपकरणों में उन्होंने नवीनता का स्वागत किया। घोषणा की है — ''एनु स्वेच्छा गाट्ड — नेनु गगनमव विहार विहंगमपति'' अर्थात् मैं स्वेच्छा वादी युवक हूँ। मैं गगनतल में विहार करनेवाला गरुड हूँ। कवि बडे प्रेमी और विलासी थे। कवि की पत्नी का देहांत असमय में हो गया, वह इस शोक में किसी की सहानुभूति नहीं चाहता। जब कवि ने अनुभव किया कि मित्र उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहा है तो उसके मुँह से गर्जना निकली — मुझे देखकर किसी चिंतित नहीं होना। मुझे समझ लिया है? मैं अनंत शोक का भोग भरता हुआ तिमिर लोक का एकमात्र अधिकारी हूँ।''

जो लोग कवि को बंधन में बांधना चाहते हैं, कवि उन से कहता है — ''आप लोग मुझे जी भरकर रोने क्यों नहीं देते? मुझे भूल जाओ। मुझे छोड दो।'' अंत में कवि इस वेदना के कारण ही भगवान के चरणों में पहुँच जाता है। कवि इस काव्य में कहता है — ''हे भगवान! कलुष और पंकिल नेत्र कोटर में उत्पन्न होनेवाली मेरी मलिन अश्रुधारा आपके चरणतलों में प्रवाहित हो, परम पावन कालनी की भाँति पवित्र बन जायगी। शास्त्रीजी की वेदना का आलम गहरा पुट ही है कि इनकी कविता संकलन का नाम 'कृष्ण पक्षम'' वेदना सम्राट की रचना का दूसरा नाम क्या हो सकता था? इनकी रचना 'उर्वशी' की गिनती उच्चकोटि के काव्यों में की जाती है। इनकी कविता में हिंदी के प्रसादजी की भाँति जितना ओज वाणी उतना ही

तेज और भावों में उतना ही गाम्भीर्य भी है। कुछ आलोचकों ने इनकी 'ऊर्वशी' की तुलना रवींद्र के 'ऊर्वशी' से की है। इनकी रचनाओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक कवियों में करुण रस के कवि हैं।

वेदुल सत्यनारायण शास्त्री :—

इनकी वेदना व्यक्तिगत न होकर विश्वव्यापी है। वे बहुत ही भावुक कवि हैं। 'दीपावली कथा', 'निरीक्षणमु', 'आशागानमु', पूजाप्रसूनमुलु' आदि अनेक काव्य संग्रह हैं।

दुव्वूरि रामिरेड्डी :—

तेलुगु साहित्य में इनका दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान है। एक तो भाव-कविता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया, दूसरे एक नयी धारणा के संस्थापक के नाते इन्होंने बहुत सम्मान प्राप्त किया है। अंग्रेजी और फारसी के साहित्य का आपने गंभीरता से प्राप्त किया और दोनों से प्रभावित होकर आपने तेलुगु में कुछ नये प्रयोग किये हैं। आपने उमर खय्याम की रुबाइयों का मूल फारसी से तेलु तेलुगु में अनुवाद किया। वह 'पानशाला' नाम से प्रभावित हुआ। इनकी कविताएँ रहस्यवाद से पूर्ण है। 'कृषीवलुडु'(किसान) आपकी कीर्ति का केतु है। किसी ने इसके काव्य के बारे में लिखा है — ''आन्ध्र साहित्य परंपरा के अनुसार राजा महाराजा और प्रेमी तथा प्रेमिकाओं की कहानी लिखने की प्रथा रही है। किंतु इस परंपरा को हटाकर जीवन के विविध रूपों को काव्य में अंकित करने का प्रयत्न वास्तव में साहसपूर्ण है। रामि-रेड्डी ने समाज के उस अंगों को काव्य का आधार बताया है, जो दिन-रात खून-पसीना एक करके अभाव का अनुभव करता है। 'कृषीवलुडु' जैसा काव्य लिखकर कवि ने एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

श्री नायनि सुब्बाराव ने 'सौभद्रनि प्रणय यात्रा' में उदात्त शृंगार का वर्णन

है जिसकी नायिका वत्सल पवित्र प्रणय की प्रतिमूर्ति है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के 'किन्नेरसानि पाटलु' गीतिकाव्य की नायिका किन्नेरसानि जड सरिता की सुंदर प्रतिमूर्ति है जो आन्ध्र परिवार की नारी की सजीव एवं सुंदर प्रतिमूर्ति है। श्री अडवि बापिराजु की 'शशिबाला' गगन विहारिणी परी है। श्री नंडूरि सुब्बाराव के 'यैंकि-पाटलु' काव्य में वर्णित नायिका 'यैंकि' उपर्युक्त सभी नायिकाओं से भिन्न है। वे सब अमून्य की पुतलियाँ है, जब कि यैंकि है जुहू की जंगली कली। इस काव्य में भाव और भाषा में, वस्तु और छंद में अपूर्व नव्यता दृश्यमान है। इसके गीत लोक गीतों के शैली में है। जो लोक भाषा में लिखे गये हैं।

कादूरि वेंकटेश्वरराव और पिंगलि लक्ष्मीकांतमु ये दोनों इस के युग के अमूल्य रत्न हैं। इनका 'सौंदरनंदम' भाषा, भाव, शैली सभी दृष्टियों से एक सुंदर काव्य है जिस में अनिर्वचनीय प्रतिभा का प्रकाशन हुआ है। इस काव्य में नंद और सुंदरी का प्रणय बुद्धदेव का उपदेश नंद का संसार त्याग, नायिका का विरह एवं कुटुंब त्याग का सजीव वर्णन मिलता है। नंद और सुंदरी का प्रेम विश्व प्रेम के रूप में परिणित होता हुआ दिखाया गया है। इस में एक पद्य इस प्रकार है ——

अंकमुन नुंडु रत्नमुनु अवधरिंचि
मुद्दुगुयु बंगारमुनु वेल्वरचि पुरमु
वीडि तन्मणि रूप एवेडि
यद्दु लोरचुंटि केमुष पेयुदुवोकानि।।

—— उधर बुद्ध देव अपने साथ नंद को ले जाकर धर्मोपदेश अवस्था में कवि अपनी ओर से कहता है कि हे बुधदेवा! तुमने क्या किया है? वह सोना जो अपने बीच की मणि के कारण चमक रहा था। उसको आलंग करके तुम सोने को विरह रूपी

अग्नि में तपा रहे हो और मणि को उपदेश रूपी कसौटी पर कसकर देख रहे हो। अभी तक पता भी नहीं लगता कि तुम कौन सा आभूषण बनाने में तत्पर हो? किंतु इतना तो स्पष्ट होता है कि तुम ऐसा अमूल्य एवं सुंदर आभूषण तैयार करोगे जिसके कारण विश्व कल्याण होगा।

इन्होंने सौंदर नंदमु के बाद 'पौलस्त्य हृदय' नामक काव्य लिखा। यद्यपि 'सौंदरनंदमु' भगवान बुद्ध से संबंधित है। फिर भी इस काव्य में अपने युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का अच्छा समन्वय हुआ है। महात्मा गांधी के संदेश को कवियों ने आत्मसात किया है और उसका उपयोग समूचे काव्य में किया गया है।

इस शाखा के कुछ कवि मधुर भक्ति मार्ग पर भी चले जिन में सर्वश्री बालांत्रपु वेंकटराव और ओलेटि पार्वतीश प्रमुख माने जाते हैं। ये दोनों घनिष्ट और अभिन्न मित्र हैं। यहाँ तक कि इन दोनों ने अपने नामों का प्रयोग कविता क्षेत्र में किया है। दोनों कवि वेंकटपार्वतीश कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। दोनों की कविता निर्झर की भांति है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर वे मुग्ध हो जाते हैं। किंतु उनके लिए प्रकृति केवल चेतना का आधार ही नहीं है। दोनों कवि प्रकृति के सभी व्यापारों में अनंत रमणीय शक्ति को प्रतिच्छायित होते देखते हैं और यही प्रतिच्छाया ही उनके काव्य के लिए विशेष महत्व रखता है। वेंकट पार्वतीश के कारण तेलुगु में प्रकृति रमणीय, अनंत और अज्ञात शक्ति के प्रभाव से आलोकित हो उठती है। यह आलोक कवियों का ध्यान सामान्य मानवीय प्रेम से हटाकर रहस्य की ओर आकर्षित करता है। और इस तरह भाववादी कविता की शाखा कुछ पृथक दिखाई देने लगती है। दोनों कवि उस अनंत का अनुभव करते हैं। किंतु उसे पहचानने में असमर्थ रहते हैं पर यह असमर्थता अनुभाव जन्य आनंद में बाधा उपस्थित करती। इनका लिखा हुआ 'एकांत-सेवा' नामक काव्य तेलुगु साहित्य में विशेष महत्व रखता है। 'साहित्यव्यासमुलु'

नामक पुस्तक में 'एकांतसेवा' के बारे में कृष्णशास्त्री ने लिखा है — 'बंगाल भाषा में जो महत्व रवींद्रनाथ की गीतांजलि को प्राप्त है, तेलुगु साहित्य में वही महत्व वेंकटपार्वतीश के 'एकांतसेवा' नामक काव्य को है। इनकी 'काव्य कुसुमावली' के दोनों भागों ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है।

श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के 'महती' काव्य में और 'अन्वेषण' कविता में यही भक्ति प्रदर्शन है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का 'शृंगारवीथि' काव्य इस शाखा का अनन्य रत्न है।

गुर्रम जाषुआ :—

आधुनिक कवियों में गुर्रम जाषुआ बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रसों के परिपाक में आपको असाधारण सफलता मिली है। भावों में गहराई है। इनका 'फिरदौसी' नामक खण्ड काव्य बहुत लोकप्रिय हुआ। इस काव्य में फारसी के शाहनामा नामक महाकाव्य के अमर कवि 'फिरदौसी' की जीवनी को कवितारूप किया गया है। 'मुमताज महल', 'गब्बिलमु', 'कांदिशीकुडु', 'बापूजी', 'नाकथा', 'नेताजी', आदि आज भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

मायवरपेद्दि बुच्चिसुंदरम शास्त्री ने 'सती स्मृति', 'पंचवटी', 'शबरी' आदि काव्यों को लिखा। नायनि सुब्बाराव ने 'सौभाग्य प्रणय यात्रा' नामक काव्य लिखा।

पटकुरि नरसय्या ने 'होयसलवी' नामक काव्य लिखा। 'वीरचरित' वीरबाला मांचाला, आदि को लिखा।

तुम्मल सीतारामपूर्ति :—

इनका 'राष्ट्रगीता' नामक काव्य राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है। 'धर्म ज्योति' 'महात्मा गांधी' की आत्म कथा और 'ज्योति' नामक काव्यों को लिखा।

<u>जेय्यात पापय्य शास्त्री</u> :-

ये पौराणिक गाथाओं के प्रति सहज आकर्षण रखते हैं। भाव और भाषा दोनों सरलता लिये हुए हैं। करुण रस इनका प्रिय रस है। 'कुंती देवी' काव्य में इन्होंने पात्रों का चित्रण बहुत कुशलता से किया है। संस्कृत, हिंदी, तेलुगु और अंग्रेजी के विद्वान हैं। इनकी कविता में संगीत के गुण विद्यमान हैं। 'पुष्पविलासमु' 'उदयश्री', 'विजयश्री', 'करुणश्री', कल्याण कादंबरी, विश्वविपंची, पार्वती, टेंगुटूरि प्रकाशम पंतुलु आदि काव्यों को लिखा।

रसयुग काव्य शैली विलक्षण है। इस में स्थूल के प्रति सूक्ष्म की क्रांति है। इस युग में कवियों की बौद्धिक वेदना, अपूर्व कल्पना-प्रवणता के द्वारा व्यक्त हुई है। इस में प्रकृति और प्रणय के आध्यात्मिक स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है। वृत्त-गति से नारी ममता का विकास और उसके क्रमागत स्वरूप में आमूल परिवर्तन हुआ। इस युग के काव्यों में नारी और पुरुष से ऊँचा स्थान मिला है। सर्वचिंतनावाद, अनंत की खोज, भावनाओं का मानवीकरण इस कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। इस जगत के कवि वस्तुओं को स्वप्न-चित्रों के समान पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। इनका विश्वास है कि काल्पनिक काव्य जागृत का स्वप्न सा है। इस युग के काव्यों में भाषा साहित्यिक हो गई है। आगे की अभिव्यक्ति में लाक्षणिक वक्रता है। भाषा संगीतात्मक है।

<u>तृतीय युग</u> :- (1930 से आज तक)

ई. 1930 तक तेलुगु की कविता अप्रतिहत रूप से आगे बढ़ी। लेकिन बाद के ~~कविता में~~ कवि अंधानुकरण करने लगे। फलतः कविता में भावना का बल और सामूहिक आदर्श क्षीण हुए। ऐसी स्थिति में उसके विद्युत क्रांति करके साहित्य के क्षेत्र में प्रयोग करनेवाले कवि आगे जो प्रगति को कवि के नाम से व्यवहृत हुए।

ई॰ 1930 के बाद यूरोप के पूँजीवादी देश में बड़ा आर्थिक संक्षोभ उत्पन्न हुआ जिस से वहाँ के मजदूरों के आंदोलन प्रबल हुए। रूस में समाजवादी व्यवस्था स्थिरता से अपना विकास करने लगी और संसार के श्रमिक लोगों में क्रांति की चेतना भरने लगी, ई॰ 1934- 39 के बीच में फासिस्ट राज्यों की दुराक्रमण चिंता प्रबल हुई, जिसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध फूट निकला। इस प्रकार यूरोप की साम्राज्यवादी एवं समाजवादी व्यवस्थाओं का संघर्ष प्रारंभ हुआ।

भारत में 1927 तक काँग्रेस सबल हुआ। युवकों में विदेशी प्रभुता के विरुद्ध क्रांति की भावना भभक उठी। काँग्रेस के वामपक्ष में रहनेवाले व्यक्तियों ने स्थान-स्थान पर किसान-मजदूर-संघ स्थापित किये। 1934 में सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। इसके बाद किसान-मजदूर संघ ने प्राप्ति शक्ति संचमन किया। 2 अक्तूबर 1939 को बंबई में 10 हजार मजदूरों ने युद्ध और साम्राज्यवाद के विरुद्ध हड़ताल चलायी थी, जिसके पीछे मार्क्सवादी वर्ग-चलानेवाले बड़ा काम किया।

फलस्वरूप प्रगतिशील लेखकों के संघ की स्थापना हुई। इस ने पूँजीवाद का खंडन किया। साम्राज्यवादी तत्व को ठुकराया और युद्ध ने बाँधा को सीधे फटकार दिया। उसने समाज में फैली हुई भूख, दरिद्रता, असमानता, पराधीनता जैसे रोगों के निर्मूलन में अपना हाथ बँटाया और धार्मिक द्वेष एवं जातिगत अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंकने की दीक्षा ले ली। इस ने मान लिया कि साहित्य सामाजिक समष्टि चेतना का प्रतिबिंब है और पीड़ित प्रजा को बल देना ही साहित्यकार का लक्ष्य है। इन कवियों की विचारधारा इस प्रकार इस प्रकार रहती है। —— मानव भूलोक का प्राणी है। उसे भूख-प्यास लगती है और सब प्रकार के शारीरक सुखों को प्राप्त करना चाहता है। उसकी यह लालसा अस्वाभाविक नहीं है। वह इस लालसा को लिये हुए कर्मक्षेत्र

में उतरता है और शायक्तिकार इस बात का प्रयत्न करता है कि उसे उनका अभीष्ट संतोष प्राप्त हो गया।

मानव की इस लालसा का विरोधी मानव ही है। मनुष्य जब अपनी इच्छाओं की पूर्ति केलिए दूसरों का विध्वंस करता है, पृथ्वीतल पर नये-नये संघर्षों का उदय होता है। कवि चाहता है, उसका पात्र या नायक इन संघर्षों से आगे नहीं।

प्रगतिशील कवि स्वभावतः समाज में एक नये परिवर्तन को देखना चाहता है, वह मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण को सत्य नहीं मानता है और इसी लिए युद्ध के ऐसे स्थल पर संघर्ष करता है, जहाँ मानवहित का हनन किया जाता है। प्रगतिशील कवि सामान्य जनता के साथ मातृभूमि का आदर भी करते हैं और किसी भी प्रकार की परतंत्रता को स्वीकार नहीं करते। उन्हें मातृभूमि से स्नेह होता है और न किसी व्यक्ति विशेष का अपूर्ण।

प्रगतिशील विचारों को अपनाकर तेलुगु में अनेक कवियों ने साहित्य की अच्छी सेवा की है। ऐसे कवियों में सर्वश्री सिष्ट्ला उमामहेश्वरराव, श्रीरंगं श्रीनिवासराव, श्रीरंगं नारायणराव, पुरिपंड अप्पल्न स्वामि आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्रीरंगं श्रीनिवासराव ने उपर्युक्त परिस्थितियों से प्रेरित होकर मार्क्सवादी सिद्धान्त की दिशा में अपने काव्य 'महाप्रस्थान' की रचना की थी जिस में संसार के सारे देशों की पीडित मानवता को स्थान मिल गया। मार्क्सिस्ट सिद्धांतों की दृष्टि से इतिहास का सिंहावलोकन करना, मानव-समाज का अनुशीलन करना, श्रीश्री की नवीन काव्य-वस्तु की विशेषताएँ हैं। कविते। ऐ कविते।। शीर्षक कविता में वर्णित "गंदे नाले" में पिघला होकर, हिलने डुलने का बल भी खोकर पडे पियक्कड का अर्धचेतनामय आलाप। प्रलाप अभ्यस्त करनेवाली कणिका भी गति रीति में, अर्ध निमीलित नयनों में स्थित भय-बाधा की किसलय लाली फँसी कर तट के व्याल के कथित हुआ गुप्त

तत्व, आदि विषम परिस्थितियों के लौह पदों के नीचे दबेजानेवाले सत्य हैं। ऐसी वस्तु को लेकर श्रीश्री ने तेलुगु के प्रगतिवादी काव्य का स्वरूप निश्चित किया। श्रीश्री के साथ और कई कवियों ने इस क्षेत्र में अपनी पैनी लेखिनी को छवी बनाकर चलाई जिन में आरुद्र, कुंदुर्ति, आंजनेयुलु, कालोजी, नारायणराव, दाशरथि कृष्माचार्य, सी॰ नारायणरेड्डी, डी बालगंगाधर तिलक आदि के नाम प्रमुख हैं।

दाशरथि कृष्णमाचार्य :—

आधुनिक युग की मान्यताओं को हृदयंगम करके जो कवि साहित्य की आराधना में लगे हुए हैं उन में दाशरथि और नारायणरेड्डी का स्थान बहुत ऊँचा है। दोनों कवि हैदराबाद राज्य के तेलुगु भाषी क्षेत्र में संबंधित है, अतः दोनों की रचनाओं पर ये स्थानीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। दोनों कवियों ने अपनी कविता की प्रेरणा अपने ही क्षेत्र में प्राप्त की है। हैदराबाद राज्य का तेलुगु भाषी प्रदेश तेलंगाना कहलाता है। कई कारणों से यह प्रदेश बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में पिछले दिनों समुचित विकास नहीं कर सका। जनता भी इस विवशता को इन दोनों कवियों में अनुभव किया। दाशरथि ने छोटी आयु में ही काव्य जगत् में कीर्ति अर्जित की। जब इन्होंने 'ना तेलंगाना', 'कोटि रतन वीणा' (मेरे तेलंगाना भूमि कोटि रत्नों से जटित वीणा है) गान किया तो तेलंगाना की जनता ने जैसे अपने मनोभावों को ही मुखरित होता हुआ देखा। तेलंगाना में जो जन-आंदोलन हुए, दाशरथि और नारायणरेड्डी की वीणा उन्हें सदैव सहायता करती रही। सामाजिक विषयों को स्वीकार करके भी दाशरथि ने अपने काव्य में प्रौढता और प्रांजलता की पूरी पूरी वर्षा की। दाशरथि वास्तव में क्रांति और विप्लव के कवि हैं। नवनिर्माण और जीर्ण प्राचीनता के विध्वंस के लिए अदम्य भावना उनके हृदय में लक्षित होती है। विध्वंस के पश्चात् होनेवाली उसकी अपरिमित शालीनता कवि से भली भाँति परिचित है। इनके

कुछ गीतों के नाम क इस प्रकार हैं — अग्निधारा, अग्नि गीतम, अग्नि वल्लिका, महान्ध्रोदयम्, और महावाद नामक दो काव्य अभी हाल ही में प्रकाशित हुए हैं। अपनी प्रतिभा और आधुनिक भावनाओं से ओतप्रोत कविता के कारण दाशरथि ने तेलुगु के कवियों में उच्चकोटि का स्थान प्राप्त किया है।

सी॰ नारायणरेड्डी ने पद्य की अपेक्षा गीत अधिक लिखे हैं। इनकी कृतियों में 'जलपात' और 'नागार्जुन सागरमु' उल्लेखनीय हैं।

<u>कालोजी नारायणराव</u> :—

तेलंगाना ने भी भावनाओं को वाणी के माध्यम से व्यक्त करने के लिए कालोजी नारायणराव भी बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। इनके अनेक गीत साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। तेलंगाना के गलिपाटि राघवरेड्डी, कप्पगंतुल लक्ष्मण शास्त्री, गडियारपु रामकृष्ण शर्मा आदि ने अपने काव्यों से तेलुगु भारती की श्रीवृद्धि की है।

मलया के बारे में श्री सोमसुंदर ने ग्रीस के बारे में श्री कुंदुर्ति आंजनेयुलु ने, हिरोशिमा के बारे में श्रीरंगं गोपालकृष्ण ने और कई अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर कई अन्य क कवियों ने कविताएँ लिखकर नवीन समाज का नवोन्मीलन किया।

आज कल तेलुगु में 'दिगंबर' कविता के नाम से एक कविता की शाखा निकल पड़ी जिसके कवि श्री महास्वप्न, निखिलेश्वर, ज्वालामुखी, चेरबंडराजु और नग्नमुनि हैं। ये कवि आज के समाज का राजनैतिक एवं धार्मिक कुत्सित रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत करके उसकी दुर्बलताओं का मूलोच्छेदन करना अपनी कविता का लक्ष्य मानते हैं। इनका कहना है — समाज में फैले हुए विभिन्न आडंबर कुचल दिये जाँय और कुरीतियाँ दफन की जाँय। हर एक को अपने निजी रूप को पहचानना अत्यंत आवश्यक है।

नवीन काल की तेलुगु कविता पर संप्रदायों का प्रभाव कुछ दिखाई दे रहा है।

1950—60 के बीच निकली कविता को देखने से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में कोई नयावाद नहीं आया। इस काल की कृतियाँ तीन शाखाओं में बाँट सकते हैं —— सांप्रदायिक, प्रगतिवादी और समन्वयात्मक।

पहली शाखा के पथ-प्रदर्शन जागृति प्रगति कवि हुए जिनके काव्यों पर काल्पनिक कविता का प्रभाव भी यत्किंचित दिखाई देता है।

दूसरी शाखा के पथ पर दाशरथि, नारायणरेड्डी आदि कुछ कवि आगे ले चले।

आज स्वतंत्र भारत में तेलुगु में जो कविता रची जा रही है वह अधिकतर समन्वयात्मक भावना से संपन्न है। उस में भारतीय भावात्मक एकता के विकास के लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं। इस प्रकार तेलुगु की नवीन कविता सदा सर्वदा नवभारत निर्माण में संलग्न होकर आगे बढ़ रही है।

* * *

2 · 0 · 9

वैंकट पार्वतीश कविद्वय: व्यक्तित्व व कृतित्व

2 · 0 · 0

वैंकट पार्वतीश कवियों का व्यक्तित्व व कृतित्व

परिचय :—

आधुनिक तेलुगु काव्य परंपरा में युगल कवियों की परंपरा प्रचलित हुई है। उन में तिरुपति वेंकट कवियुगल उल्लेखनीय हैं। तेलुगु में युगल कवियों को (जंट कवुलु) कहते हैं। इस परंपरा में सर्वश्री वैंकट रामकृष्ण कविद्वय, वैंकट पार्वतीश कवियुगल एवं कादूरि पिंगल कवियुगल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर वैंकट पार्वतीश कवियुगल का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। प्रथम कवि बालांत्रपु वैंकट पार्वतीश राव नाम से अभिहित हैं और द्वितीय ओलेटि पार्वतीश नाम से व्यवहृत हैं। लेकिन ये वैंकट पार्वतीश नाम से साहित्य जगत् में प्रख्यात हुए हैं। काकिनाडा में स्थापित आंध्र प्रचारिणी ग्रंथ माला के द्वारा इनकी प्रतिष्ठा बढी और धीरे धीरे इनकी कीर्ति चारों ओर फैली। बहुतों का अनुमान है कि आंध्र में नयी कविता परंपरा का श्रीगणेश करने का श्रेय इन्हीं को है। एक प्रकार से आधुनिक तेलुगु काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

जीवन परिचय :—

बालांत्रपु वैंकटराव वैसे एक वकील के पास लिखा पढी का काम किया करते थे और अवकाश के समय रचना किया करते थे। ओलेटि पार्वतीश पिठापुर में स्थित वेलिदण्डि सत्याराव्जी के प्रेस का काम देखा करते थे। ये दोनों सन् 1908 तक एक दूसरे से अपरिचित ही रहे। यद्यपि ये दोनों पिठापुर के समीप ही रहा करते थे। उस समय काकिनाडा से 'कल्पलता' नामक एक पत्रिका निकलती थी। उस में भाषा संबंधी प्रश्नावली निकला करती थी। एक समय उस प्रश्नावली के उत्तर श्री वैंकटराव,

पार्वतीश एवं वीरराय कवि के द्वारा दिये गये थे। पार्वतीश को प्रथम पुरस्कार, वीरराय कवि को द्वितीय पुरस्कार, और वेंकटरावजी को तृतीय पुरस्कार मिला। ये तीनों एक ही डाल पर बैठे तीन कवि कोकिल रहे हैं। परस्पर ये एक दूसरे की कविता सुनकर मुग्ध हुए। बस। तभी से ये दोनों मिलकर कविता करने लगे।

यद्यपि ये बहुत अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, फिर भी इन्हें विशेष लोकानुभव प्राप्त था। न तो इन दोनों ने गुरुमुख से ही संस्कृत का अध्ययन किया था और न अंग्रेजी का। केवल बंग भाषा का अध्ययन यत्किंचित किया था। वह समय कवींद्र रवींद्र की गीतांजलि के प्रभाव का था। समस्त भारतीय भाषाओं पर उस समय गीतांजलि का प्रभाव पड़ा। तेलुगु के इस कवियुगल की बंग भाषा में इतनी प्रतिभा को देखकर श्री पीठिका पुराधीश्वर ने इन्हें एक मुद्रणालय प्रदानकर सहयोग दिया। नरसरावपेटा में जो आन्ध्र सारस्वत परिषद हुई थी जिसके सभापति उय्यूर के महाराज थे, इनको 'कविराजहंस' की उत्तम उपाधि से विभूषित किया। सन् 1943 में इनकी षष्टिपूर्ति का समारोह बड़े वैभव से संपन्न हुआ था। उपाधि प्रदान कर इनका सम्मान किया गया। कुछ समय से ये कवियुगल वाल्मीकि रामायण का तेलुगु में अनुवाद करने में लगे हुए थे। वे इस के अधिकांश भाग को पूर्ण कर चुके थे और 'सुंदरकांड' का अनुवाद कर रहे थे। अब इस महान ग्रंथ को पूर्ण करने का सहज उत्तरदायित्व श्री वेंकटराव पर है। उन्हें अब अकेले ही इस कार्य को पूर्ण करना होगा।

ये बंगाल के सहज सौंदर्य से प्रभावित हुए। विशेष रूप से बंकिम चंद्र की रचनाओं के प्रति और गीतांजलि कवींद्र रवींद्र की गीतांजलि के प्रति आकर्षित हुए। इसी से इन कवियों ने परिश्रम करके बंग भाषा का अध्ययन किया और अपनी कविता में उस साहित्य की विशेषताओं को समाविष्ट कर तेलुगु भाषा के सौंदर्य में चार चाँद लगाये।

1. काव्य
2. उपन्यास
3. नाटक
या
24
22
20
18
16
14
12
10
8
6
4
2
0
1
2
3
कृतियाँ
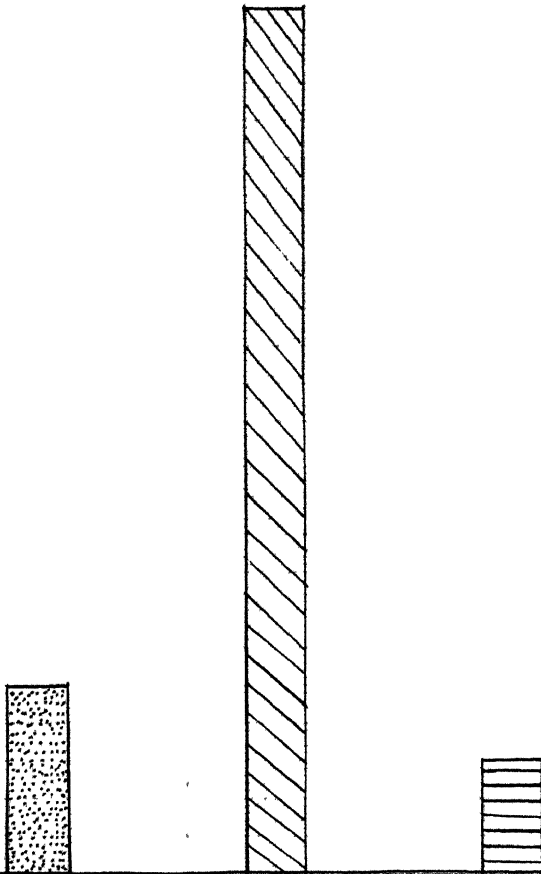
<u>व्यक्तित्व</u> :—

इस कविद्युगल का व्यक्तित्व बाहर और भीतर सभी ओर से बड़ा सुकुमार, कोमल और कमनीय है। अपनी प्रकृति, व्यवहार, वेषभूषा, वार्तालाप सभी में ये कवि बड़े सरल, बड़े सौम्य, बड़े शांत, बड़े मितभाषी, शिष्ट, सुसंस्कृत और कलात्मक है। ज्यादा भीड़भाड़ उन्हें पसंद नहीं। कोमल इतने हैं कि नाराज होना उन्होंने सीखा ही नहीं। कटुता, विद्रोह और संघर्ष की ~~कक~~ कठोर कर्कश बातें उन्हें सुहाती ही नहीं। बस वे अपने जीवन को अपने वातावरण को सुंदर, सुकोमल और परिष्कृत चाहते हैं। इसी के वे आदी रहे। सच तो यह है कि ये कवि अपनी कविता की भांति ~~कोमलकक~~ कांत कमनीय सुकुमार है।

<u>रचनाएँ</u> :—

वेंकट पार्वतीश के अब तक अनेक काव्य ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

काव्य :— काव्य कुसुमावली (दो भाग), बृंदावन, भाव संकीर्तन, ~~स्को~~ एकांतसेवा।

उपन्यास :— इनके अनेक उपन्यास हैं। अधिकांश उपन्यास अनूदित हैं। इंदिरा, उन्मादिनी, सीतादेवी, वनवास, नीलांबरी, प्रणय कोप, प्रतिज्ञापालन, प्रभावती, प्रमदावन, शकुंतला, चंदमामा, राजसिंह, वसुमती वसंत, वीरपूजा, राजभक्ति, वैद्य विजेता, लाख रुपये, मनोरमा, मातृमंदिर, रजनी, कृष्णकांत का मरणशासन, चित्र कथा, सुधा लहरी उल्लेखनीय हैं।

नाटक :— धनाभिराम — इसे वेंकटरावजी ने लिखा। पार्वतीश ने ~~सत्यसांक~~ ताराशशांक तथा सुवर्णमाला नामक दो नाटकों की रचना की।

<u>काव्य-साधना</u> :—

इन दोनों कवीश्वरों ने अनेक काव्यानुवाद भी किये। नवीन शैली में काव्यों का

प्रणयन किया है। ये मूलतः प्रेम, सौंदर्य और जीवन की कोमलतम भावनाओं के सुकुमार कवि हैं। काव्य कुसुमावली से लेकर एकांतसेवा तक इनकी काव्य-साधना ने जीवन के अंतरंग और बहिरंग सौंदर्य बोध की अभिव्यक्ति की है। जीवन का बहिरंग सौंदर्य इन्हें सुरम्य प्रकृति के मनोरम सौंदर्य प्रेरणा मिली है और यही सौंदर्य इन्हें कल्पना के स्वर्ग लोक में उड़ा ले गया जहाँ बाहर के संसार से आँखें मूंदकर चिरंतन सौंदर्य की राशि से सज्जित स्वप्न जगत की इन्होंने दृष्टि की है। वस्तु जगत के यथार्थ को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना इनके कवि जीवन को रुचिकर नहीं। इसीलिए उस कुरूप यथार्थ को उतना ~~का~~ महत्व न देकर उसे आँखों से हटाकर अपने स्वप्निल संसार में उसके आदर्श और सौंदर्यमयी रूप की सुकुमार अभिव्यक्ति ही ~~इनका~~ उनकी काव्य साधना की मूल चेतना है। इनके अंतर में जो सौंदर्य या चेतना ज्वार उमड़ रहा है, काव्य के माध्यम से वे युग जीवन की समस्याओं को प्रवाहित करना चाहते हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य और सुषमा ने कवियुगल के हृदय में कविता का स्फुरण किया है। प्रकृति की आत्मा से साहचर्य स्थापित कर उसकी सुखद और आह्लादपूर्ण अभिव्यक्ति हमें इस कवियुगल की काव्य कुसुमावली आदि प्रारंभिक रचनाओं में मिलती है। अपने प्रकृति वर्णन में इन कवियों ने एक आह्लादमयी चेतन सत्ता का आभास प्राप्त किया है। तथा सुकुमार नारी के रूप में उसकी उपासना की है। इनकी कविताओं पर कवींद्र रवींद्र, वर्ड्सवर्त, शेल्ली, कीट्स और टेन्निसन की रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव है। सौंदर्य के ये कवि कुसुमावली में प्रेम के कवि बन गये हैं। इस कृति में यौवन, सौंदर्य तथा संयोग-वियोग जनित तरुण हृदय की मार्मिक अनुभूतियाँ हैं। काव्य कुसुमावली — दूसरे भाग में प्राकृतिक सुषमा के स्थान पर मानव जीवन के आंतरिक सौंदर्य का गुंजन है। इनकी कलात्मक चेतना धीरे-धीरे विकसित होते होते प्रकृति के

माध्यम से मानवात्मा में प्रविष्ट हुई और उसी के अंतर्भूत रूप व्यापारों को इन्होंने काव्य का परिधान दिया है।

आगे इन कवियों ने जीवन के कटु यथार्थ का दर्शन किया है और इस यथार्थ को आदर्श में परिवर्तन करने के लिए जनजीवन के टूटी टहनियों को हरी-भरी कोंपलों से भरने के लिए उनके कुरूप को सुंदर बनाने के लिए बृंदावन और भावसंकीर्तन में इन्होंने आध्यात्मिक सौंदर्य का दिव्य आलोकन किया है। भौतिकवाद के रूप में ये आज युग-जीवन के बहिरंग पक्ष को समुन्नत बनाने के साथ साथ आध्यात्मिक रूप में उनका अंतर-पक्ष का ही उत्कर्ष चाहते हैं। इनका समस्त साहित्य मानव जीवन को बहिरंग और अंतरंग दोनों ही रूपों में पूर्ण और सुंदरतम अभिव्यक्ति है, अपनी इस विकास-क्रम में कवि ने भावसारिणी के रूप में जिन उपकूलों को स्पर्श किया है उनका दर्शन यहाँ उचित ही होगा। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि बैरन का कथन है — "मैं मनुष्य से कम प्यार नहीं करता, पर प्रकृति को मनुष्य से अधिक प्यार करता हूँ" ये शब्द तेलुगु के वेंकट पार्वतीश कवि युगल के लिए अंतरशः उपयुक्त है। इनके काव्य का प्रथम विषय प्रकृति है और गौण विषय मानव है। ये मानव के रूप को भी प्रकृति के समान सुंदर बनाना चाहते हैं। अब तक प्रकृति मानवजीवन से संबंधित थी। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। पर बीसवीं शताब्दी में वह मानव की भाँति ही चेतना संपन्न और स्वतंत्र बने। प्रकृति को इस युक्ति में वेंकट पार्वतीश का सब से बड़ा हाथ है। इन्होंने मानवजीवन को प्रकृति से संबंधित करके प्रकृति को सब से अधिक गौरवप्रदान किया है। नन्नय से लेकर आज तक के समस्त तेलुगु कवियों में वेंकट पार्वतीश प्रकृति के सब से बड़ा कलाकार हैं, प्रकृति का इन्होंने शरीर ही नहीं देखा, उनका आत्मा को भी देखा है, और उनका कोमल भावनाओं में भी देखा है।

प्रकृति वैंकट पार्वतीश कवि की जननी है। कवि की प्रथम कृति काव्य कुसुमावली का अधिकतर वर्ण्य विषय प्रकृति है। प्रकृति की छोटी मोटी विविध वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूली से रंगकर काव्य की सामग्री से संचित की है। फूल, पत्ते और चिड़िया, बादल, इंद्रधनुष, ओस, तारे, नदी, झरने, उषा, संध्या, कलरव, मर्मर जैसे गुडियों और खिलौनों की तरह उनकी बाल कल्पना की पिटारी को सजाये हुए हैं। ~~उनकी काव्य~~ इनकी काव्य कल्पना धीरे धीरे सम वयस्का बाल प्रकृति के गले में बाहें डाले, प्राकृतिक सौंदर्य के छाया पथ में विहार करती है। कविद्वय प्रकृति के रूप पर मुग्ध हैं। एक रहस्यमय बालिका की तरह वे उसके गुणों का अनुकरण कर उस से एकाकार करना चाहते हैं। इनके नयन गहरे धुंधले, धूले, साँवले, मेघों से भरे रहते हैं। इनकी आशा का गीत इंद्रधनुष सा गीला जान पड़ता है। युगल कवि ने प्रकृति की सुकुमार भावनाओं के चित्र अनेक खींचे हैं। समग्र रूप से इनका प्रकृति चित्रण अनेक विविधता लिये हुए हैं। इन्होंने प्रकृति का कोना-कोना देखा है। कभी वे प्रकृति को चेतना संपन्न प्राणी मान उस से अपनी मन की बातें करते हैं। दुख-सुख और प्रेम की बातें करते हैं। कभी उसके विराट सौंदर्य को देख विस्मय प्रकट करते हैं और कभी कभी नारी रूप में उसकी उपासना करते हैं। कहने का अभिप्राय है कि वैंकट पार्वतीश के कवि ने मूलतः प्रकृति के सुरम्य क्रोड में ही क्रीडा की है।

प्रकृति ने भी वैंकटपार्वतीश को भावुकतावादी, छायावादी और रहस्यवादी बनाया है। भावसंकीर्तन और ~~एक~~ एकांतसेवा में इनके भाव और विचार प्रस्फुटित हुए हैं। इन्होंने इन काव्यों में एक विराट, व्यापक आनंद सौंदर्य अपने में व्याप्त एक रहस्यमय और विराट सौंदर्य चेतना के प्रति कवियों के भीतर एक अज्ञात आकर्षण को जन्म दिया। इनकी अनेक रचनाओं में प्रकृति की इस सौंदर्य चेतना के प्रति एक

अज्ञात आकर्षण जिज्ञासा और कुतूहल की प्रवृति प्रदर्शित है। इनका रहस्यवाद सहज स्वाभाविक है। क्यों कि व्यक्त जगत के नाना रूपों और व्यापारों के भीतर किसी अज्ञात चेतना का उपासना करता हुआ कवि जिस अतृप्त जिज्ञासा की बात करता है वैसी रहस्यमयी भावनाओं प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के मन में इस रहस्यमय को देखकर उठा करती है। उन अज्ञात सत्ता का परिचय प्राप्त करने केलिए उन्मुख कवि की आत्मा कहती है। इन कवियों की भाव-प्रवणता सहज और सरल है। यह कहीं से उधार नहीं ली गई है। पुलकित प्रकृति की भाँति कवियुगल ने अपने आराध्य देव के प्रति आराधना संबंधी जिन प्रणय गीतों की रचा है उन्हीं गीतों का ग्रंथ 'एकांतसेवा' है। अपने आराध्य के प्रति विनय, आत्मनिवेदन और अनन्यानुराग का प्रदर्शन प्रदर्शन जिन संकीर्तनों में संकीर्तन किया है वही 'भाव संकीर्तन' है। तेलुगु भारती के पुष्पोद्यान में से विविध पुष्पों का चयन कर जो आठ अध्यायों में काव्य को समर्पित किया वही 'बृंदावन' है। इस में श्रीकृष्ण के प्रति अतिशय अनुराग की अभिव्यक्ति है। यद्यपि इस का रस शृंगार है लेकिन वह अत्यंत संयत और मर्यादित है। उन में नाम मात्र के लिए भी वासना की गंध नहीं। अगर इनकी काव्य कुसुमावली के दोनों रागों को देखें तो इनकी भाव प्रवणता और रागात्मकता स्पष्ट हो जायगी। नमूने के रूप में एक पद्य को ले सकते हैं —

तिम्मनि नुन्ननि तेल्लनि येनलेनि
मोग्गल तोनुंडि निग्गुदोसि
× × ×
चिवुराकु रन्नेल सकीरिंचि।

— भाव यह है कि साफ सफेद, स्वच्छंद, के अगणित कलियों में से सुंदर, अनुपम कुसुमों से मधुर मीठे अमूल्य शब्द में से सार निकालकर बिना सूंघे सूंघे, बिना परख

हुए नवकिसलयों के दोनों में संजोग कर रखा है। इस प्रकार इनके काव्य साधना में भावपक्ष बड़ा प्रबल दीखता है।

<u>वेंकटपार्वतीश के काव्य कला</u> :—

अपने भाव जगत की भाँति इनके काव्य कला भी सौंदर्यप्रिय है। कलाकार के व्यक्तित्व की भाँति सुकुमार और कोमल है। उन में मध्याह्न सूर्य की प्रखरता नहीं बालारुण रश्मियों का हलका प्रकाश है। इस कला की सब से बड़ी विशेषता है। इस कला की सब से बड़ी विशेषता है उसकी चित्रमयता है। वह प्रत्येक अनुभूति मुद्राओं, चेष्टाओं, वातावरण और विविध भंगिमाओं की ऐसी चित्रपटी प्रस्तुत करती है कि चलचित्रों के सदृश सारे चित्र आँखों के सामने नाचने लगते लगती है।

कला के क्षेत्र में इस कविकुसुम का स्तुत्य रूप उनका शब्द शिल्प सौंदर्य है। उनका एक एक शब्द उनके भावों की अंतरात्मा का प्रतीक है। जिस प्रकार एक कुशल शिल्पि एक एक भंगिमा एक एक रेखा में विविध भावों के का अंकन करता है उसी प्रकार उनके शब्दों में अनुभूति की रेखा है। इसका कारण यह है कि शब्दों की अंतरात्मा और शरीर का जितना सूक्ष्म ज्ञान इन कवियों को है उतना अन्य किसी कवि को नहीं।

ये कवि भाषा, भाव और स्वरयुक्त सामंजस्य द्वारा ध्वनि चित्रण करने में बड़े पटु है। इनकी कविता कामिनी की कमनीय कांति अलंकारों की मंजुल आभा से दीप्तमान है। इनकी कविता में अलंकारों की योजना जो हुई है वह बड़ी स्वाभाविक है। अलंकारों को जबर्दस्ती ठूँसने के पक्ष में ये कवि नहीं। स्वयं इन कवियों ने अपनी कविता कन्या के बारे में कहा है कि यह काव्य अलंकारों का विस्तार नहीं चाहता। इन कवियों ने कवींद्र रवींद्र का अनुकरण किया है। कवींद्र रवींद्र ने भी कहा है कि

आभार, ऐगात, छंद, हार, अकल, अलंकार — अर्थात् ये मेरे गीत अपने सभी अलंकारों को त्याग करता है। स्पष्ट है कि वैंकट पार्वतीश कवि अपनी कवितकन्या को अलंकारों के बोझ से लाद देना नहीं चाहते। उसे निरलंकृत, सहज, स्वाभाविक मंजुल रूप में विहार करते देखना पसंद करते हैं।

इनकी कला का अनन्य सौंदर्य इनके छंदों में प्रकट हुआ है। इनके छंदों से यह स्पष्ट है इनकी कविता के प्राणों में संगीत भरा है। छंदों ने ही उनके हृदय को स्पंदन दिया है। भावों की गति के अनुसार इनके छंद चलते हैं। उनमें राग की धारा अनिवार्य रूप से व्याप्त रहती है। उसकी प्रति में पूर्ण सामंजस्य है। 'बृंदावन' काव्य में विविध छंदों का प्रयोग मिलता है। अन्य काव्यों में गीतों की प्रधानता है।

कला के क्षेत्र में आधुनिक तेलुगु के लिए वैंकट पार्वतीश का सब से बड़ा उपकार इनका भाषा सौंदर्य है। इनके भावों से तेलुगु प्राणवत हो उठी है। इन्होंने भाव और रूप दोनों से घिरी तेलुगु कविता को उन्मुक्त रूप दिया। जिस में न छंदों का बंधन है और न तुक का लगाव। इनके भाव नये हैं, भाषा नयी है। छंद नये हैं। इनकी सब सी बड़ी देन तेलुगु भाषा को कोमल कांत बनाना। इनकी इस कोमल भाषा में व्याकरण की कठोरता भी कोमल बन गयी है। भावों को मूर्त रूप देने केलिए इन्होंने यत्र-तत्र नये शब्द भी गढे हैं।

<u>तेलुगु की काव्य-धारा में वैंकट पार्वतीश का स्थान :—</u>

वैंकट पार्वतीश तेलुगु के सुंदरतम कलाकार है। भाव और कला दोनों दोनों का ही अनिर्वचनीय वैभव ये अपने साथ लिये हुए हैं। कला के क्षेत्र में जहाँ इन्होंने पुरातन काव्य की समता में नयी काव्य रीति का रंगमहल खड़ा किया है। वहीं भावना के क्षेत्र में प्रकृति और मानव जीवन के अतुलनीय सौंदर्य से तेलुगु जगत् को श्रीसंपन्न बनाया है। तेलुगु में इन से उच्चकोटि के कवि हैं, पंडित हैं, भावुक हैं पर इनकी

ऐसी कोमल, सरल, स्वच्छ, सुललित कविता करनेवाले विरले ही हैं।

आबाल गोपाल के अनुकूल सर्वजनानुमोद योग्य सरल भाषा में लिखनेवाले कवि इनके जैसे देखने में नहीं आते। सर्वसाधारण जनता के मनोनुकूल लिखने में ये सिद्धहस्त रहे। उनका हर एक पद्य भाव और अर्थ-गौरव से संपन्न है। ये कवि अपनी लेखिनी को लेकर इस प्रकार उपदेश किया करते थे —

ध्यायमु निर्मल भारति
ध्येयम्मुग बुध जननि धेयमुग जग
द्गेयमुग ललित सुध
प्रायम्मुग पाठक श्रवण पेयम्मुगन्।।

— निर्मल भावना को ही लक्ष्य बनाकर पंडितों के लिए जो आदर्श है और संसार से जो प्रशंसनीय है ऐसी मृदु मधुर सुधा की भाँति जो कविता की जाती है वह पाठकों केलिए श्रवणपेय और आनंदप्रद होती है।

इस कवियुगल ने तेलुगु में आदिकाव्य रामायण काव्य को गेय काव्य रूप प्रदान करने का उपक्रम किया था और वह अयोध्या कांड तक पहुँच गया था। पर बाद को इन में से पार्वतीश कवि के देहांत होने से वह अधूरा रह गया।

इनकी कविता निर्झरिणी की भाँति है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर वे मुग्ध हो जाते हैं। किंतु इनके लिए प्रकृति केवल चेतनता का आधार ही नहीं है। दोनों कवि प्रकृति के सभी व्यापारों को एक अनंत रमणीय शक्ति से प्रतिभासित होते देखते हैं और यह प्रतिभासिता ही इनके काव्य केलिए विशेष महत्व रखती है। वेंकट पार्वतीश के कारण तेलुगु कविता में प्रकृतिरमणीय, अनंत अज्ञात शक्ति के प्रभाव से आलोकित हो उठी है। इस आलोक में कवियों का ध्यान सामान्य मानवीय प्रेम से

हटकर एक रहस्यपूर्ण अज्ञात आध्यात्मिक प्रेम के प्रति आकृष्ट हुआ है।

एकांत सेवा की भूमिका में तेलुगु के आलोचक प्रवर श्री वेंकुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने जो कहा है वह अक्षरशः सत्य है।

''यह काव्य समीक्षा से परे है। बंग भाषा में रवींद्र की गीतांजलि का जो स्थान है वही स्थान तेलुगु में इन महाकवियों से प्रणीत ~~'एको~~ 'एकांतसेवा' का है।

12 जून, 1955 को पिठापुरम में चेलेटि पार्वतीशम की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनकी आयु 72 वर्ष की थी। वे गरीब हालत में मेरा उन्होंने तेलुगु संस्कृति और साहित्य के पुनरुत्थान के ~~लि~~ लिए जो सेवा की थी, उसके लिए उन्हें केंद्रीय प्रशासन से सौ रुपये की मासिक पेन्शन मिलती थी।

उन्होंने 40 वर्षों के अंदर सौ से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित किया। दो वीणाएँ थीं — उनमें से एक अब टूट गयी है। यह सौभाग्य की बात है कि अभी श्रीयुत बालांत्रपु वेंकटराव जीवित हैं।

* * *

३·०·०

कृतियों का मूल्यांकन

3·0·0

कृतियों का मूल्यांकन

बृंदावन :—

वेंकट पार्वतीश कविद्युगल प्रवीण काव्यों में बृंदावन का अन्यतम स्थान है। यह काव्य श्री रावु वेंकट महीपति गंगाधर बहादूर के पाणिग्रहण महोत्सव के शुभ अवसर पर उन्हें प्रेमोपहार के रूप में समर्पित है। इस में आठ अध्याय हैं जो विभिन्न शीर्षकों में विभक्त है। 1) अंकुरारोपरण 2) अमृतसेचन 3) आर्द्र पल्लव, 4) अग्र-विस्तार 5) अंग सौंदर्य 6) अभिनव कोरक 7) आमोद प्रसून और 8) आनंदफल शीर्षकों में अभिहित है।

1) अंकुरारोपरण :—

कविद्वय ने अवतारिका में कवियों ने कहा परम पावन मूर्ति ईश्वर को बम्मेर पोतना ने श्रीराम के रूप में समझकर भगवान का प्रणयन किया था। उसी तरह हम भी रामाराव बहादूरजी के विवाह के शुभ अवसर पर इस बृंदावन काव्य को शहनाई की भांति समर्पित कर चुके। युवराज दंपति को आशीर्वाद देने के बाद काव्य का अंकुरारोपरण करते हैं। इस में सत्य, शौच, दया धर्म मूर्ति, परम साधु केदार चक्र-वर्ती नामक राजा राज्य करते थे। राजा सकल सद्गुण संपन्न थे, जनार्दन के कृपा-पात्र थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। कुल में, गुण में भक्ति में, ख्याति में, कीर्ति में, नित्य सत्क्रिया में, धर्म तत्परता में वे अद्वितीय थे। उनका चित्त माधव के श्रीचरणों में संलग्न था। वे बड़े ही दान तत्पर यज्ञ-याग-अनुष्ठान में योग देते थे। परदा साभिलाषी को, परधनाभि लाषी को, नित्य परद्रव्य, पर सेवा प्रमुखपर उनके राज्य में कोई नहीं था। सकल सौभाग्य संप्राप्त होते हुए भी निस्संतान थे। पुण्य दंपति ने संतान लाभ के लिए व्रत नियमों का पालन किया। परमात्मा के अनुग्रह से

एक बालिका उत्पन्न हुई। वैपु गोपव और साधुवृंद के मध्य में जन्म लेने से उस बालिका का नामकरण 'वृंदा' किया।

अमृत सेवन :—

माता-पिता बड़े लाड प्यार से उस बालिका का लालन-पालन करने लगे। वह भी चंद्रमा की कलाओं की भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। जब समान उम्रवाली बालिकाएँ खेलने आती तो आश्चर्य की बात है कि इस महाराज की पुत्री वृंदा पहले हरि-हरि कहने लगी।[1] पिंजर में स्थित तोतों के द्वारा वासुदेव, जगन्नाथ का स्मरण करते सुनकर वृंदा भी उनका अनुसरण करने लगती। वह पो फटने के पहले ही उठती थी। माता-पिता के चरणारविंदों को प्रणाम करती थी। तत्पश्चात् पूजा मंदिर में जाकर भगवान श्रीनाथ की सेवा करती थी। बाद को वैपुओं से और ग्रामियों से मिलती थी। अपनी उम्रवाली बालिकाओं के साथ भवन के आस-पास खेला करती थी। गुरु के आने पर श्रद्धा तथा भक्ति के साथ पाठ सीखती थी। अपना समय बिलकुल व्यर्थ नहीं गँवाती। वह बड़ी तेज बुद्धि वाली थी।[2] उसकी भक्ति अनुपम थी। यह नहीं मालूम कि पैदा होने के पहले ही भक्ति पैदा हुई या बाद को। पर वह महाविष्णु के चरणों को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ती।[3] कवि उसके सुंदर अवयवों का मनोरम वर्णन करते हैं। कर कोमल कमल सदृश हैं। मुख, कमल जैसा है। नयन कमल पत्र जैसे हैं। सचमुच यह बालिका सुंदर, आनंदप्रद कमलों को गृह बनानेवाली साक्षात् लक्ष्मी ही है। उसके घर एक दिन दुरवासा आये थे। राजा ने श्रद्धा से अर्घ्य-पाद्य देकर उस मुनि का सत्कार किया था। महामुनि उस

---

1) वृंदावन — 31

2) वृंदावन — 43

3) ,, — 45

कन्या के गुणों को, शील को देखकर मुग्ध होते थे। वे ~~आर्य~~ आशीर्वाद देते थे कि मेरे भगवान की सेवा निरंतर करते रहो। हे राजन्। इसके जन्म से तुम्हारा जीवन सफल बन गया है। इस कन्यारत्न से कुल का उद्धार और जगत् का कल्याण होगा।''

आर्द्र प्रसंग ।—

जब जब राजा मुनि के वचनों को स्मरण करते शरीर पुलकित हो उठता था और प्रसन्न हो जाते थे। वृंदा सदा श्रीकृष्ण के खिलौने को अपने पास रखती। सखियों के साथ खिलौनों की शादी करती और खेल मनाती। कृष्ण को मंदिर में रख कर दूध, फल आदि अर्पण करती। उस प्रतिमा से वह पूछती थी कि मुझे अपने बाल-कृष्ण से गीत गाने दो, उनसे कुछ कहने दो और नमस्कार करने दो। वह सोचती थी कि शायद कृष्ण भूखे हों। इसी से कहती है कृष्ण। शायद भूखे हो, मृष्टान्न लाकर खिलाती, प्यास लगी होगी यह समझकर हे कृष्ण। वासुदेव। कहकर अमृत जल देती है, शायद कृष्ण को बहुत गरमी लग रही होगी — यह समझकर चामर से हवा करती है। उनका समय कटना न होगा समझकर रमणीय कथाओं को कह सुनाती है। गोपाल की जब कोई इच्छा होगी यह उसे मालूम नहीं। इसलिए अपनी ही इच्छा से कामना कर उन्हीं का समर्पण करती रहती है। वृंदा का कृष्ण के प्रति कितना प्रेम है।

अवतिकमार ।—

वृंदा इस प्रकार कृष्ण के प्रति अनुरक्त होती हुई बढने लगी। सभी पुराणों को, शास्त्रों को, रसपूर्ण प्रबंधों को पढकर पढकर जान चुकी है। समभाव, राग, ताल, लय के साथ गाकर सब को मुग्ध कर लेती थी। नवीन भावों से युक्त कविता सुधा रसास्वादन स्वयं करती और ~~कब~~ दूसरों को सुनाकर कराती। सदा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को जानकर साधना करती। सकल भूत हित क्रियाचरण करती। स्वयं

आचरण कराती। उनकी भक्ति धीरे-धीरे उम्र के साथ बढ़ने लगी। उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति में सबकुछ ढूंढने लगी। वेदों को प्राप्तकर ब्रह्मा को जिसने दिया, पीठ पर मंदरगिरि का भार जिसने ग्रहण किया, पृथ्वी को अपनी दंष्ट्रा पर जिसने उठाया प्रह्लाद की रक्षा जिसने की, वामन बनकर भी आकाश को जिसने छू लिया, समस्त भूमंडल कश्यप मुनि को जिसने दे दिया, प्रजा हित को दृष्टि में रखकर जिसने शासन किया, गीता का प्रवचन जिसने किया, उस सगुणमूर्ति, निर्गुणमूर्ति, सत्यमूर्ति, वेदमूर्ति— आदि को श्रीकृष्ण में ही देख सकी। वृंदा की माता भी उनके अनुरूप थी। पुत्री वृंदा से कहती थी — 'अखिल लोकनाथ को आत्मनाथ बनाकर लोकमातृ पद को प्राप्त करना चाहती हो, वाह! तुम कितनी धन्या हो। मन को विचलित मत करो। हृदय में प्रियतम को रखकर उनका ध्यान करो और दर्शन करो। भक्ति श्रद्धा से सेवा कर उनकी प्रशंसा पाओ, अन्य चिंताओं को भूलकर, सभी कष्टों को भूलकर, माता पिता को भूलकर, अपने को भूलकर, आत्मेश्वर को वश में करो। इस प्रकार वह निरंतर कृष्ण के रूप का चिंतन, गुणों का गायन और उनके अनुग्रह को प्राप्त करने में तत्पर रहती थी।

<u>अंग सौंदर्य</u> :—

वृंदा सर्वदा श्रीकृष्ण को देखने का अभ्यास करती। वह सोचती थी, इधर-उधर के गीतों को बहुत गाया करती थी। सोचने लगती थी — हे कृष्ण! तुम्हारे हाथों की मुरली न बन सकी। कभी यह भाषा, कभी वह भाषा बोलती रही, पर तुम्हारे घोंसले की सुग्गी न बन सकी। कभी इस घर में, कभी उस घर में रहीं पर तुम्हारे घर की दासी न बन सकी, कभी वह वेष और कभी यह वेष धारण करती रही, पर तुम्हारी अभीष्ट मूर्ति न बन सकी। अंधेरे गृह में तुम्हें तुम्हें पहुँचने का मार्ग न जानने से हाथ पसारकर व्याकुलता से प्रार्थना कर रही हूँ, हे आदिदेव! कृपा करके, कम

से कम अब तो आकर अपना ।" कृष्ण के प्रति उसकी व्याकुलता बढ़ती ही जाती थी। श्रीकृष्ण के वचनों का, स्वरूप का, चरणों का स्मरण करती रहती थी। 'हे कृष्ण! तुम्हारे वचनों को सुन सकूँगी, ऐसी आशा करती रही हूँ। क्यों नहीं सुनाते तुम्हारे अद्वितीय रूप सौंदर्य को देखना चाहती हूँ। क्यों नहीं दिखाई देते। यह कैसा मेरा दुर्भाग्य है? मुझे ऐसा विश्वास है कि तुम्हारे चरणपद्म में चल सकूँगी। पर तुम इधर कदम क्यों नहीं रखते? इस इच्छा से प्रसन्न होती हूँ कि कभी न कभी मैं तुम्हारे पास रह सकूँगी। पर तुम स्मरण तक नहीं कर रहे हो। यह कैसा धर्म है? मैं तो अल्प बुद्धिवाली हूँ। परमाणु सदृश हूँ। तुम श्रेष्ठ हो। त्रिभुवन पति हो। हे प्राणनाथ! भक्ति के लोकनाथ! क्या तुम्हारी सेवा करना भी अपराध है? श्रीकृष्ण को कौन-सा शय्या, कौन-सा गीत पसंद हो, समझने के लिए प्रतिदिन अत्यंत भक्तिभाव से प्रतीक्षा करती हूँ। हे कृष्ण! तुम सदा अनशन करते ही हो, पर कभी मुझे मुट्ठी भर पानी तक, पीने का संकेत नहीं। थकावट ही है। पर रात में भी विश्रांति लेने का चिन्ह नहीं, भ्रमण ही है। पर क्षण भर कदम रखने का चिन्ह ही जागरण ही है। पलभर लिए भी आग लग जाने का चिन्ह नहीं। प्राण वल्लभ! कहाँ पर कैसा है, यह मालूम नहीं। कहाँ जाकर बुलाने से, और कैसी प्रार्थना करने पर घर आयेगा। इस प्रकार वह श्रीकृष्ण का अन्वेषण करती रही।

<u>8 अभिनव कोरक</u> :—

उसने अपनी मनोकामना यों प्रकट की — "सात द्वीपों को पालनेवाले मेरे पिता जी केदारेश्वर हैं। उनकी पत्नी मेरी माता जी है वह ईश्वर पत्नी पार्वती से भी बढ़कर है। शृंगार तथा भक्ति को स्वीकार कर, शिव का अवलोकन करना ही मेरा अध्ययन है। समस्त लोगों के लिए आश्रयपीठ, गुरुचरण पीठ ही मेरे लिए

सब कुछ है। जप, तप, उपवास व्रत आदि शैशव से ही मेरे अभीष्ट काम हैं। राधापति तथा जगद्गुरु की पत्नी बनना ही मेरा मनोरथ है।" वृंदा के इस प्रकार मनोरथ को सुनने पर सखियाँ कभी-कभी परिहास करती थीं। वे कहती थी —
"क्या कमला मनोहर श्रीकृष्ण तुम्हारी आँखों के लिए सांगत्य सा लग रहा है, सहस्र युगों से तप करके बडे बडे मुनि तक जो उन में नहीं पा रहे हैं ऐसे विश्वेश्वर को अपने करतल सुख बनाने की इच्छा हुई क्या? वह लावण्य विलास, वह शुभ कटाक्ष देखने का सौभाग्य कहाँ? वह लीला विलास हास, वह मरन्द केली, वह निर्मल आनंद उस गोलोक में गोपबालक तथा गाँवों से पूजित गोपाल का स्तवन करना राधा के बिना अन्य स्त्री को कहाँ सुलभ है।"

उसका प्रेम बढता ही जाता है। एक ब्राह्मण युवक ने वृंदा के पास आकर विवाह करलेने की अपनी कामना प्रकट की है। तब उसे सदुपदेश देती थी —
"हे ब्राह्मण। अकेले इस वन में अबला है, सखियाँ बदल में नहीं हैं, ऐसा समझ कर बलात्कार से मेरे स्पर्श करने का साहस मत करो। तुम्हारी यह छेड़खानी ठीक नहीं है। ऐसा क्या यहाँ कोई रक्षक नहीं है, दिशाओं के अधिपति यहीं घूम रहे हैं। भगवान की आज्ञा से धर्ममूर्ति यहीं छिपा हुआ है। भगवान अत्र-तत्र सर्वत्र विराजमान है। यह तुम्हारा आचरण अविवेकपूर्ण है।" इस प्रकार उसने उस ब्राह्मण कुमार को अधर्माचरण से विरत करने का उपदेश दिय। अंत में वह ब्राह्मण कुमार छोटा सा बच्चा बन गया।

आमोद प्रसून :—

सभी देवता उस सती वृंदा की महिमा को देखकर प्रार्थना करने लगे — "हे जननी। अपने धर्म संस्थापन केलिए तप करके ख्याति पायी हो। यह दंड देना उपयुक्त

नहीं। इस प्रकार शेष ने कहा। विधाता की आज्ञा से तुम्हारी परीक्षा करने आया। वह निरपराध है। इस की रक्षा करो। इस प्रकार चंद्र ने प्रार्थना की। वायु ने अग्नि अन्य सभी देवताओं ने वृंदा से प्रार्थना की। तब साक्षात् श्रीकृष्ण निज स्वरूप में प्रत्यक्ष होकर कहा — "हे कल्याणी। तुम्हारा चरित्र पवित्र है, उदार है, धर्म-रक्षा तत्पर है, तुम्हारा तप सार्थक होगा। तब वृंदा ने श्रीकृष्ण से इस प्रकार प्रार्थना की है — "हे सर्वलोकेश। हृदयेश। तुम्हारी चाह में यह तरिता बिना सूखे के अमृत रूपी समुद्र में पहुँच गयी। यही पर्याप्त है। मल्लिकाओं की यह माला बिना सूखे अमृतमूर्ति के गले में पहुँच गयी, यही पर्याप्त है। यह अल्पधूलि बिना के उड़े अमृत तेज को देख सकी, यही पर्याप्त है। ठीक पर्याप्त है। ठीक समय पर जिस भाँति जल की बूँद सुंदर मोती बनती है, जिस भाँति भूगर्भ में अग्निजल तप्त होकर स्वच्छ निर्मल अनमोल हीरा बनता है, जिस भाँति पंक में बलहीन कीटाणु रहकर भी कल्याणप्रद विजय शंख बनता है, उसी भाँति मेरे पूर्व पुण्य का आपके सैदर्शन से धन्या बन गयी। आगे इस प्रकार प्रार्थना की है — "वेदों में जैसा कहा गया है, उस तरह तुम्हारी प्रशंसा करना चाहूँ, तो भाषा कुंठित होती है। आर्यों के कहे के अनुसार पूजा करना चाहती तो ~~ब्रह्मादि~~ ब्रह्मादि देवताओं के वश में नहीं होते। सिद्धों के कहे अनुसार सेवा करना चाहती तो दिव्यशक्तिवालों के लिए भी अगोचर हो। ज्ञान से ध्यान करना चाहती तो भी प्रज्ञानिधियों की पहुँच से परे हो। हे परम पुरुष। तुम्हारा प्रेम किये बिना अन्यथा मेरे लिए और क्या है? हे प्रणय गुण प्राणनाथ। तुमने मुझे प्रेम से लालन किया। यही पर्याप्त है। देवेश। प्रेम से दर्शन किया। यही पर्याप्त है और क्या बोलूँ? हृदयेश। शुभाशीश दिया और क्या प्रार्थना करूँ? कोकेश। जब दिया और क्या माँगूँ? हृदयेश। रतिक्षेत्र में आनंदित

किया और क्या चाहूं? हे प्राणनाथ! तुम्हें पाने के बाद, प्रशंसा करने के बाद चरणों की सेवा करने के बाद, प्रेम देखने के बाद और क्या चाहिए।" उसके बाद सभी देवताओं ने आशीर्वाद दे। ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी बनने का आशीर्वाद दिया। सभी देवता, सभी लोग प्रसन्न हुए।

आनंदपत्र :—

शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया। केदार महाराज के आदेश से विवाह की तय्यारियाँ होने लगी। वधू वृंदा और वर साक्षात् श्रीकृष्ण इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए सब को आह्वान भेजे गये। ऐसा लगता था समस्त वैकुंठ सुरपुर कैलास ब्रह्मांड वहीं पर आ गये हों। कवि कहते हैं — "भगवान के सहस्र रूप होंगे। इसलिए जहाँ देखो वहीं है। सहस्र आँख होंगे, वही सब बंधुओं को देखता है। सहस्र हाथ रहे होंगे, सभी कामों को वही कर देता है। हजार मुख रहे होंगे, सभी सेवकों को आदेश देता रहता है। विश्वपति ही जामाता होनेवाला है। ऐसी प्रसन्नता में केदार महाराज विस्मय हो गया है।" वृंदा के लिए विवाह में पधारे बंधु बांधव उसकी प्रशंसा करने लगे। ठीक मुहूर्त के समय माता धर्मवति, पिता केदार ने स्वर्ण थाल में वृंदा के साथ रखकर श्रीकृष्ण के करकमलों को समर्पित किया। उस पुण्यदंपतियों ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की — "हे भगवान! यह बालिका श्री चरणारविंदों का चिंतन करती रही। पर सेवा करना नहीं जानती। श्रेष्ठ नाम मंत्रों को रट चुकी। पर उच्चारण करना नहीं जानती। अमृत रूपी भोजन, पानीय अर्पित कर चुकी, पर देना नहीं जानती। श्री मनोहर से प्रेम कर चुकी पर देना नहीं जानती। श्री मनोहर से प्रेम कर चुकी पर यह उसको आदर करना नहीं जानती। भक्ति भावना में तुम्हीं को सर्वस्व समझ चुकी पर अन्य विषयों को नहीं जानती। हे सद्गुणधाम! देवता सार्वभौम! हमारी बेटी को किस तरह देखोगे।" इस तरह वृंदा ने श्रीकृष्ण

का वरण जहाँ किया वह प्रदेश बृंदावन नाम से प्रसिद्ध हो गया।

बृंदावन यद्यपि लघु खंड काव्य है पर अत्यंत मनोहर है। कथा बहुत संक्षिप्त है। पर कवियों ने आठ अध्यायों में संपन्न किया है। बृंदा के जन्म से लेकर पाणिग्रहण तक की कथा वर्णित है। बृंदा के चरित्र का चित्रण बड़े स्वाभाविक रूप में और मनोज्ञ रूप में किया गया है। बृंदा श्री कृष्ण की सखियों में श्रीकृष्ण की अनन्य अन्यतम सखी के रूप में प्रसिद्ध रही है। उसकी दिव्य गाथा को मनोज्ञ शैली में कवियों ने प्रस्तुत किया। भाषा, पद, शब्द के तो ये कवि बड़े आचार्य हैं। शब्द सौंदर्य, नाद सौंदर्य की रूप कल्पना में वे सिद्धहस्त हैं। कल्पना में वे सिद्ध हस्त हैं। पदलालित्य, वर्णमैत्री, मंजुल और मनोहर हैं। वेंकट पार्वतीश कवियों ने नयी शैली नये भाव, नवीन रूप चित्रण के द्वारा तेलुगु भारती का इस लघु काव्य 'बृंदावन' के सौरभ से सुगंधित किया। उनके काव्यों में निस्संदेह इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

<u>काव्य-कुसुमावली — एक परिचय :—</u>

सहज प्रकृति सौंदर्य को देखकर मुग्ध होनेवाला कवि है। स्वभाव के अनुरूप सौंदर्य का सृजन करनेवाला कवि है। सहज सौंदर्य का रसास्वादन करनेवाला कवि है। सारी सृष्टि सुंदर है। पर ब्रह्म की सृष्टि सुंदर होते हुए भी मनोहर होती है। विधाता केवल प्राकृतिक सौंदर्य का प्रदर्शक ही है। कविब्रह्म प्रदर्शक होने के साथ प्रकर्ता भी है।

सुंदरता हृदयाकर्षक होती है। कवि उस सौंदर्य की सृष्टि कर उस से मानव हृदय कमलों को विकसित कर पवित्र सौरभ को सर्वत्र विकीर्ण कर देता है। अपने से विनिर्मित पवित्र सृष्टि सौंदर्य में अनुराग की कल्पना कर मानव हृदय से अपवित्र भावों का उन्मूलन करता है। मानव अपने कर्तव्य से परिचित होकर धन्य बनता है।

केवल नीति का कोरा उपदेश देना मात्र या कर्तव्य नहीं। लेकिन नीतिकार और कवि का उद्देश्य एक ही है। कवि शासन रहित प्रभुहितैषी, मित्र, प्रियबंधु है। कवि अपनी कविता में, जड में चेतनता की कल्पना कर चेतनता में दिव्य तेज की कल्पना कर विश्व कल्याण की कामना करता है। अतः धर्मप्रवक्ता से, दंडनायक से, मंडलेश्वर से मानव समाज में कवि श्रेष्ठतर बन रहा है।

कविता ईश्वर प्रदत्त दिव्य शक्ति है। वही नश्वर पदार्थों को शाश्वतता प्रदान कर रही है। कविता की शक्ति स्थिर है और दृढ है। क्षण क्षण परिवर्तनशील चंचल काल उनके समक्ष अपना बल नहीं दिखा सकता। कविता सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक है।

कविता गायन में दिव्य मधुरिमा है। उस मधुरिमा में समस्त प्राणियों के हृदय संताप में क- दूर करने की अद्वितीय शक्ति रहती है। उस दिव्य संगीत श्रवण मात्र से मानव हृदय रूपी कुसुम विकसित होकर प्रशांत, उदार भाव रूपी परिमल से सुगंधित होता है। उस गान माधुरी के स्वर अपने में प्रतिभासित अमूर्त मूर्ति सर्वेश्वर की आनंद कलाओं को प्रस्फुटित करते हुए काल कवलित मानवों को सुख प्रदान कर रहे हैं। उस संगीत से न केवल मानव हृदय बल्कि शरीर भी दिव्य बनता है। उस गानामृत का माधुर्य क्षण क्षण नवीन होता है। उस अनामृत का माधुर्य क्षण क्षण नवीन होता है। उसका नाद दिव्य आनंद प्रद है। वह विमल तेज नित्य जगत्प्रकाशित है। महर्षि वाल्मीकि ने श्री रामनाम से व्यास ने श्रीकृष्ण नाम से नन्नेचोड ने परमेश्वर के नाम से तिक्कना ने हरिहर के अद्वैत नाम से उसी कोमल मधुर मोहन रूप का रागालापन कर अनवरत आनंदामृत के तरंगों में मानव हृदय कमलों को झुलाया है।

आधुनिक तेलुगु के कविद्वय वेंकटपार्वतीश ने उसी मधुरामृत गान को गाया। इस कविद्वय ने बंग भाषा काव्य सौंदर्य का आन्ध्र लोक को परिचय कराया। आन्ध्र

भारती की सेवा में नित्य नवीन मनोज्ञ काव्य कुसुमावली नाम से अष्टोत्तर शत पंक्ति पारिजात प्रसून माला समर्पित की।

सब से पहले कुसुम में 'अक्षर' कुसुम की कल्पना की गई है। इस में पद लालित्य, अर्थ गौरव, भाव सौंदर्य पर प्रकाश डाला। अक्षर ज्ञान का महत्व बताया गया। प्रकृति जीव और ईश्वर का संबंध सूचित किया गया है। मानव को सब से सर्वोच्च सोपान पर पहुँचानेवाला साधन एक अक्षर ज्ञान है। यह अक्षरज्ञान अनंत शक्ति से संपन्न है। इस में अक्षरगीत कुसुम से गुल्मकित कुसुम तक जो सोलह कुसुम हैं वे सब के सब अविकसित कुसुम ही कहे जायेंगे।

सत्रहवाँ कुसुम 'चाँदमामा' पूर्णिमाचंद्रमा के समान परिपूर्ण विकसित कुसुम है। यह चंद्र 'पेड़ की डालियों के छेदों में से शुष्क पल्लवों पर हिमकण देकर न जाने कितने मोतियों को उत्पन्न कर रहा है। इन कवियों ने उज्ज्वल चाँदनी की छटा गायन किया है। अव्यक्त मधुर स्वर से कोयल ने गीत का आलापन किया है। जगत् में छोटे-छोटे बच्चों को ऐसे चाँद को दिखाकर माताओं ने गाना ~~गाना~~ गाया।

''मातल्लि जाबिल्ल जूचि नाने
अल्लरलु पेय काटलनाडुचुंडु''

—— अर्थात् नन्हीं बेटी ने चाँद को देखा है जो अच्छे होते हैं वे हठ नहीं करते जो बुद्धिमान होता है, वह पहाड़ पर जाता है। यह जो चाँदनी है शीतलता देता है बेटी आज इस ने तुझे देखा है। यदि तू खाना नहीं खायेगी तो यह हँस देगा। प्रेममयी माँ इस तरह अपनी बच्ची को पुचकारती है — ''माँ इस नन्हें चाँद की माँ कौन है? इसे खाना कौन देती है - - - - - - - - - खाना न मिले तो पहाड़ पर जाकर ~~क~~ डर से शायद कहीं नीचे गिर न जाय।'' इस प्रकार लाडली बिटिया ने

मीठी बातें सुना दो।'' लेकिन रात होने पर भी घर न आकर बाहर ही पौ फटने तक घूमेगा, क्यों?'' नन्ही बिटिया की इन बोलों में कवियों की कल्पना दिखाई दे रही है। अब तक प्रकृति की रमणीय कल्पना में कवि हृदय निमग्न रहा है। चंदमामा से लेकर 'कल' तक के चार कुसुमों में एक ही भावनिरूपण है।

इक्कीसवाँ कुसुम 'प्रणयकोप' है। यह कवियों की कल्पना के पूर्ण विकास का उज्वल उदाहरण है। इस में महाकवि पोतना के शब्दार्थ का मंजुल समन्वय और मुक्कु तिम्मना का रूप परिपाक परिलक्षित हो रहा है। राधाकृष्ण ने इस लघु प्रसंग में अपने अपने सहज स्वभाव में 'प्रणय कोप' तत्व को मनोज्ञ रूप में प्रकट होने पर कोप बढ़ता है, पीछे हटने पर प्रेम बढ़ता जाता है। इस प्रकार प्रणय कोप के रहस्य को कवियों ने बहुत ही संक्षेप में व्यक्त किया है। बाह्य प्रकृति सहज सौंदर्य को और भावना प्रकृति संसृष्ट सौंदर्य को इस में मनोज्ञ रूप में प्रदर्शित किया।

इसके बाद 'मल्लिक' 'भाग्य' 'आत्म सत्य' ये तीन कुसुम हैं। पच्चीसवाँ कुसुम 'राजभक्ति' है। इस में जार्ज सार्वभौम के भारत राज्य पट्टाभिषेक के शुभ अवसर पर प्रदर्शित प्रभुभक्ति सूचित है। कुसुम काव्य गीत है। अब तक कवियों की कल्पना में स्थिरता आ गई। कविता सरस्वती प्रसन्न वदन से प्रेमपूर्ण हृदय से और अमृत मधुर वचनों से 'हे कवींद्र' कहकर बुलाने लगी। प्रकृति में निहित रमणीयता को प्रदर्शित करते हुए प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करते हुए आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया गया है — ''विमल नवनीत मृदुल शब्दमुल गूर्चि

× × × ×

महित गति व्रायुमा कवींद्र।।''

— अर्थात् विमल नवनीत मृदु शब्दों से रम्य भाव प्रभावार्थ से महिमान्वित मन से दिव्य, भव्य दृष्टि से, दृश्य काव्यों से और श्रव्य काव्यों को हे कवींद्र। लिखो लिखो।

यों कविता का प्रयोजन अंकित है। और भी —

प्रकृति नी तोडु नीडये पलुकुचुंडि

स्वस्त चित्तत कलदैति चालु नीकु

काव्य निर्माणमुन पॉरकरमुलरसि

चूचुकोन नेल? कवित नीसोम्मुकादे?''

— अर्थात् हे कवींद्र। प्रकृति जब तेरो स्वामिनी बनकर स्वस्थ चित्त से बोल रही है, तब यही तेरे लिए पर्याप्त है। काव्य रचना में फिर साधनों को बटोरने की क्या जरूरत? कविता तेरी संपदा ही है न? कहकर प्रकृति की अनुकंपा से मुग्ध होते हैं।

''जगति नीमाट मीदुगा जरुगुचुंडु

जगति नीचेत नन्वर्थ मगुचुनुंडु

जगति नी चूपु चोवने चनुचुनुंडु

जगति धन्युडनग नीवे सत्कवींद्र।।''

— हे कवींद्र। सारा जगत् तेरे वचन के अनुसार चलता रहे, तेरे आचरण से सार्थक होता रहेगा, तेरी दृष्टि से बढ़ता रहेगा। सारा जगत तुझे धन्य कहेगा।'' इस प्रकार आशीर्वाद दे। प्रेम स्वरूपिणी और दिव्य तेजोमयी उस देवी ने साक्षात्कार किया। लोकहित भाव के अभाव में चाहे पद्य हो, गद्य हो, काव्य नहीं होगा। जब तक उस में उचित रीति से रस और भाव न हो तब तक कवियों से लिखा काव्य काव्य नहीं।

28, 29, 30 वें कुसुमों में प्रेम तत्व का निरूपण हुआ है। 31 कुसुम 'राधा' कुसुम है। इस लघु कुसुम में प्रेम में तल्लीन कवि के हृदय में ईश्वर हृदय परिशीलन की लालसा जो है वह व्यक्त हुई है। महात्मन सुंदरता को देखकर प्रेम

करोगे।

38 वाँ कुसुम प्रकृति से संबंधित है। इस में भगवान की लीलाओं का गायन उत्तम ढंग से किया गया। परवश की स्थिति में —

''देवदेव! महात्म! त्वदीय दिव्य
भावबोध विश्व प्रबंध मंदु
नेचट श्रीराम चुट्टिति येचट जित्त
गिंपचले ननि प्रासि मुगिंचिनावु।।''

— अर्थात् हे देवदेव! अपने दिव्य भाव प्रबोध के विश्व प्रबंध में कहाँ से अपना श्रीगणेश किया है और कहाँ इतिश्री की? इस प्रकार उच्च स्तर में दिव्य नाम संकीर्तन किया गया? इस मधुर 'कीर्तन' में समस्त विश्व रंगरंजित है। उस विशाल विश्व के विधाता सार्वभौम कविराज चक्रवर्ती बन गये हैं।

कवि चक्रवर्ती की महिमा आँखों में लगते ही अपने कविहृदय के वचन से यह भाव प्रस्फुटित हुआ है।—

''मेमु नीकृति चूचुचुन्नामु गानि
मेमु तन्मय लीलल नुन्नामु गानि
तेलिसिनट्लुंडि येमियु तेलियकुंडि र
नटनमुलु जेयुचुंटि मनाथ नाथ।।''

— अर्थात् हम आपके रचना विधान को देख रहे हैं और उस आनंद स्थिति में हैं। पर अवभासित होते हुए भी अज्ञात बना हुआ है। अज्ञात होते हुए भी सब सुज्ञात है। हे अनाथनाथ! ऐसा नाटक आप क्यों खेल रहे हैं? उस भावावेश में कवियों का अहंभाव रूपी आवरण हट गया। सत्य का रहस्य परिलक्षित हुआ। तब —

हे प्रभो! मुझे आत्मशक्ति को प्रकट करने की आशा नहीं, लोक में प्रसिद्ध

होने का प्रलोभन नहीं। बड़े बनने की आशा नहीं। अर्थ संग्रह की कामना नहीं।

उस महाकाव्य को न बननेवाला सच्चिदानंदमूर्ति कविराज श्री इन कवियों का आदर्श बना है। उसी आदर्श को परम लक्ष्य के रूप में मानकर ये कवि अब तक आलापते रहे।

''ये महाकाव्यमुनु पठियिंचुनपुडु
आ महाकाव्य कर्ता पै नबुपमान
भक्ति गौरव प्रेममुल प्रबलुचुंडु
नदिगदा युत्तमोत्तम मैन सुकृति।।''

—— अर्थात् जिस महाकाव्य के पढ़ते समय उस महाकाव्य प्रणेता के प्रति अनुपम भक्ति श्रद्धा होती है वही उत्तमोत्तम महाकाव्य है। इसके बाद नौ कुसुमों में सरस कविता का गान किया गया है। 42 वाँ कुसुम 'गौ' गीत है। इस के अनंतागाम्य के लिए सुलभ शैली में लिखी गयी है।

43वाँ कुसुम शुक्रवार व्रत बचन के अनुसार चलता रहेगा, तेरे आचरण से सार्थक होता रहेगा, तेरी दृष्टि से बढ़ता रहेगा, सारा जगत् तुझे धन्य कहेगा। इस प्रकार आशीर्वाद है। प्रेम स्वरूपिणी और दिव्य तेजोस्वरूपिणी उस देवी ने साक्षात्कार किया। लोकहित भाव के अभाव के चाहे पद्य हो, गद्य हो, काव्य नहीं होगा। जब तक उस में उचित रीति से रस और भाव न हो तब तक कवियों से लिखा काव्य नहीं।

28' 29, 30 वाँ कुसुमों में प्रेम तत्व का निरूपण हुआ है। इस लघु कुसुम में प्रेम में तल्लीनता कवि के हृदय में ईश्वर हृदय परिशीलन की लालसा जो है वह कथा के आधार पर लिखा गया एक एक छोटा सा रूपक है।

<u>समीक्षा</u> :-

यद्यपि इन में पूर्व कवियों की कई बातें दिखाई देती हैं। लेकिन इस का विधान आन्ध्र भाषा के लिए बिलकुल नवीन है। इनके पूर्व पुराणों में, प्रबंधों में नगर वर्णन, ऋतुवर्णन आदि यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर इस पद्धति के वर्णन हमारी भाषा में नहीं दीखते।

देशकाल परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक, राजनैतिक आदि विविध विषयों में जिस प्रकार परिवर्तन होते रहते हैं उसी प्रकार कविता में भी परिलक्षित होते हैं। वेंकट पार्वतीश कवि यद्यपि आंग्ल भाषा से परिचित नहीं थे। फिर भी वर्ड्सवर्थ आदि कवियों की तरह प्रकृति का मूल्यांकन इन्होंने किया है।

इनकी कविता कन्या प्रायः प्रकृति के मनोज्ञ वस्तुओं को ही देखा करती है। कभी तो पंजरस्थ शुक से बातें करती है। कभी वसंत की कोयल के अव्यक्त मधुर गान में गाना गाती हैं। कभी पूर्णिमा के चंद्रमा की ज्योत्स्ना में खेलती रहती है, और कभी प्रभात मलय पवन में झूला झुलाती है, कभी आनंद मंदिर में खेलती हुई विहार करती है। 'तारिकाओं' के सौंदर्य की गिनती करती रहती है, मल्लिका कुसुमों से केशों गूँथती रहती है। पद्यमालिकाओं को गले में सँभालती रहती है। 'वसंत' डोलिकाओं में झूलती रहती है। कुमुद कुसुमों से झिलमिल 'विहंग' विमानों पर विहार करती रहती है। विविध गतिविधियों से 'लक्ष्मी विलास' करती रहती है।

प्रकृति सौंदर्य को देखते समय इनकी कविता कन्या कभी कभी तो मुग्ध बनकर उपर्युक्त पदों का संग्रह कर नये रंगों को अपनाकर, नये गहनों को शरीर पर अलंकृत कर नाना हावभाव क्रियाओं से अपने को सजाती है। छोटे से भाव को भी कहीं कहीं सहज रूप में व्यक्त न करके अनेक नवीन भावों का विस्तार कर गान करना इस कविता

कन्या की आदर है। प्रकृति सौंदर्य से मुग्ध बनकर प्रकृति अनंत अनैतान्वेषण में निमग्न होती है। सर्वेश्वर का साक्षात्कार कर लीलानुभव की लालसा से यह कविता कन्या भरी रहती है। इस प्रकार की कविता में भाव सहज हैं। सत्यनिष्ट हैं, पवित्र हैं। फिर भी गंभीर है। इनकी कविता में जो छंद, व्याकरणगत दोष हैं यद्यपि ये पहले के कवियों के नियमों के विरुद्ध हैं। फिर भी आगे के आन्ध्र कवियों के लिए वे मार्गदर्शक हैं।

इनकी कविता अधिकांश ध्वनि प्रधान हैं। ये कवि प्रणय सौंदर्य के उन्नायक हैं, मधुरभक्ति के उपासक हैं। कवि प्रकृति से प्रेम करते हैं, उस प्रेम में तल्लीन होते हैं। फिर महोद्विग्न होकर रसव्यंजना द्वारा उत्फुल बनते हैं।

इस प्रकार इस कवियुगल ने आन्ध्र कविता भारती के गले में आम्लान पूजा पुष्पों का हार बनाकर डाल दिया है।

तिन्ननि नुन्ननि तेल्लनि येनलेनि

मोग्गल लोनुंडि निग्गु दोसि

चक्कनि चिक्कनि सरिलेनि कम्मनि

पूललो नुंडि प्रोगुदोसि

विरुगनि तरुगनि येनलेनि तीयनि

तेनियलोनुंडि तेटदोसि

वलगानि तरुगनि नविलेनि तोलिलेनि

चिवुराकुल दोन्ने ल सेकरिंचि।

—— अर्थात् मोठी मोठी चिकनी चिकनी असंख्य सफेद कलियों में से सार ग्रहण कर, सुंदर अनुपम फूलों से मकरंद निकालकर, अटूट, अनमोल, मधु के छत्रों से मधु निकाल कर, चिर पल्लव संपुटों जिनका कोई आदि नहीं, जो टूटे नहीं। मुरझाते नहीं उनका

संग्रह कर — गले में डाल दिया है। आन्ध्र भारत के अर्चना काव्य कुसुमावली द्वारा कवियों ने की है।

भाव संकीर्तन — एक मूल्यांकन :—

भारतीय धर्म साधना में संकीर्तन साहित्य का सर्वाधिक महत्व रहा है। भक्ति भावना यहाँ के कवियों को जन्म से ही मिलती है। महान से महान कवियों से लेकर साधारण से साधारण कवियों तक सभी ने भगवान का किसी न किसी रूप में संकीर्तन किया है। उनका विश्वास है कि इस कालयुग में कीर्तन से बढ़कर कोई सुलभ, सुगम और सरल उपाय नहीं है। "कलौ केशव कीर्तनाय" राम स्मरण धन्योपायम' आदि वाक्यों के द्वारा भी संकीर्तन का महत्व स्पष्ट है। भगवान स्वयं नारद से कहते हैं —

नाहं वसामि वैकुंठे
योगिनां हृदयेनच
मद्भक्ता यत्र गायंति
तत्र तिष्ठामि नारदा।।

— अर्थात् न तो मैं वैकुंठ में रहता हूँ न योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ पर मेरा गुण गान तथा संकीर्तन करते रहते हैं वहाँ हे नारदा। मैं रहता हूँ।

जीवन में एक ऐसी स्थिति आती है जब कि मानव का हृदय भगवन्नाम संकीर्तन के लिए अत्यंत व्याकुल रहता है। जब आर्त में तीव्र आर्ती होती है, तब भगवान की प्रार्थना के और कोई मार्ग या उपाय नहीं रहता। यद्यपि भक्ति के प्रकारों में आर्त भक्ति के लिए महत्वपूर्ण स्थान नहीं है पर गौण स्थान तो अवश्य है। इस की स्थिति में भी बहुत से भक्त कवियों ने ईश्वर से प्रार्थना की थी। भक्तों का कहना है कि प्रार्थना के बल से अचल भी विचलित हो जाता है।

आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःख के ताप से अभिभूत इस लोक में मानवों का एक मात्र शरण ईश्वर है और उनका नाम संकीर्तन ही है। कहा भी गया है —

त्वमर्कस्त्वम सोमस्त्वमसि पवन स्त्वम उत्थ

× × ×

नुगोमे फौ गम्य स्त्वमसि पचसामाश्रिमह्वम मतिम्न क्षोत।।

— जब जब क्लेश होता है और दुःख होता है तब तब कवि या भक्त अपने क्लेशों और दुःखों को भगवान के हृदय खोलकर सुनाते हैं। यह विधि नवधा भक्ति में आत्मनिवेदन को सुनने में साधारण मानव ऊब जाते हैं। पर भगवान ऊब नहीं जाता। ईश्वरीय सत्ता के प्रति अखंड और अचंचल विश्वास के कारण ही हमारे देश के मंदिरों में जो देवता प्रतिष्ठित हैं उन्हें संबोधित कर हमारे सभी कवियों ने अनेक शतकों की रचना की है। तेलुगु साहित्य में शतकों की विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। साधारण कवि से लेकर महाकवि तक सभी ने शतक रचना किसी न किसी रूप में की है। यह भी उपासना ~~होती है तो उसके रूप की कल्पना का होना स्वाभाविक ही है।~~ का एक भेद ही है। जब किसी की उपासना होती है तो उसके रूप की कल्पना का होना स्वाभाविक ही है। अपनी इच्छा के अनुसार संकीर्तन से भगवत्-तत्व को चाहे देवी के रूप में देवता के रूप में या अन्य किसी रूप में भावना कर भक्त लोग गाते हैं। कुछ लोग निराकार रूप की उपासना करते हैं तो कुछ सगुण रूप की। लेकिन चाहे सगुण की या निर्गुण की किसी की भी उपासना करें वह ठीक ही है।

''एकमसत् विप्रा बहुधा वदंति''

वेंकट पार्वतीश कवियों ने भक्ति भावना से भाव संकीर्तन किया। इनके इस भाव-

संकीर्तन में भावों की प्रधानता है। ये कवि अपने उद्देश्य के सामने विविध भाव-भंगिमाओं से आत्म-निवेदन प्रस्तुत करते हैं। भावसंकीर्तन काव्य के कुछ गीतों का उदाहरण के तौर पर मूल्यांकन किया जायगा।

1) सत्य ही मेरा संकल्प बनेगा, जो नित्य है वही मेरे जीवन का लक्ष्य बनेगा, निश्चलता ही मेरा उद्देश्य होगी, शम ही मेरा स्वभाव बनेगा, जो पावन भावना है वही मेरी कृति होगी, सुख ही मेरा जीवन बनेगा, हे प्रभो। इस प्रकार आत्मा के लिए जो अनुभव करने योग्य है वे सब मेरे लिए अनुकरणीय होंगे। तब इस आदि और अंत के बीच में रहूँगा।

कवि भावनावेश में संकीर्तन करता है — मैं ऐसी भावना आज कर रहा हूँ कि जागरण में स्वप्न और स्वप्न में जागरण, स्वप्न सा अनुभव कर रहा हूँ। नींद में मैं ने क्या क्या देखा वह मैं भूल ही गया। इस जागरण और स्वप्न में व्यग्रता क्यों? और बेचैनी क्यों? यह सब तो स्वप्न ही है।

स्वप्न ही मेरा सच्चा जीवन है। ये सब मनोकामनायें चलचित्र के रूप में है। मन का संबंध न सुषुप्ति से है और न माया से। हे प्रभो। जिस नींद में न स्वप्न हो और न जागरण हो, ऐसी नींद मुझे प्रदान करो।'' कवि इस पद्य में सतत् जागरूक बने रहकर उस परमात्मा के चिद्विलास का अनुसंधान करने की शक्ति की प्रार्थना करता है।

कवि यह भावना करता है कि हे प्रभो। बार बार पुकारने पर भी मेरे पास न आकर रूठा रहे हो। यह ठीक नहीं। अगर यह स्थिति रही तो मैं निष्ठुर बन जाऊँगा। मैं यह शपथ करता हूँ कि तुम्हारी जो अनन्य भक्त-वत्सलता और दीन बंधु की जो बड़ी बड़ी उपाधियाँ हैं। उनको असत्य घोषित कर दूँगा। अब कहाँ

जा.ोगे। यहाँ सर्वत्र मैं ने भक्ति के बंधनों से घेरा लगा दिया। हे भगवान! आ जाओ। जल्दी आओ।' इस में कवि ने जीवात्मा की परमात्मा के प्रति जो लगन है उसे स्पष्ट किया है।

भगवान अंतर्यामी है। वह अनास्तित्व होते हुए भी अस्तित्वपूर्ण है। इस भाव का इन कवियों ने इस प्रकार संकीर्तन किया। वह सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, अत्र तत्र सर्वत्र व्याप्त है, सभी इंद्रियों को जाननेवाला है। गुण रहित है, अंगरहित है, रूपरहित है। फिर भी अखिल जगत का नियामक है। बाह्य और अंतर में व्याप्त है जो पीडितों के समीप हैं। जगत्पालक है, वह अचिंतनीय है। हे प्रभो! वहीं तुम्हारा तत्व है।

'हे प्रभो! मैं अपनी व्यथा को व्यक्त करूँगा। यद्यपि गूँगा नहीं, बोल सकता हूँ। अ अंधा नहीं, देख सकता हूँ। बहरा नहीं, सुन सकता हूँ। हाथ टूटे नहीं, काम कर सकता हूँ। म लँगडा नहीं, घूम फिर सकता हूँ। केवल मेरा मन ही मूक, अंधा, बधिर और पंगु है। हे प्रभो! इस विचित्र व्याधि के निवारण के तुम्हारे चरणामृत रूपी औषधि दे दो। तब मैं जीवित रह सकूँगा।'

अपनी इष्टदेव की स्तुति में उसे तृप्ति नहीं। क्यों कि छान-बीन करने पर भी जिसकी सुंदरता अधिक होती है, उपयोग करने पर भी जिसकी कांति अधिक ही होती है, ठहरने पर पूर्णचंद्र की तरह जिसका तेज अधिक होता है, ऐसी विशुद्ध भाव सुमनों की माला तुम्हें पहनाने केलिए बनाई है। प्रभो! स्वीकार करो। अब अनुग्रह कब होगा?

कवि अपने को हीनाति हीन कहकर परमात्मा को सर्वसमर्थ कहकर उद्धार करने क की प्रार्थना करता है। हे स्वामी! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है, तुम

मुझे दया की दृष्टि से नहीं देख रहे हो। तुम्हारे पादपद्मों में प्रपन्न होकर नाम संस्मरण से भवसागर को पार करने का निश्चय किया। तुम्हारे नाम का ही मुझे एक-मात्र भरोसा, आशा, बल और विश्राम है। मैं तुम्हें छोड़कर और किसी की शरण में नहीं गया। तुम्हारा दासानुदास हूँ। मुझ पर क्यों कृपा नहीं कर रहे हो? हे दीनबंधु। तुम्हारी बडी बडी प्रशंसा इस भुवन में जो हो रही है उसे मैंने सुन लिया। तुझे मेरे जैसे करोडों भक्त तुम्हारे हो सकते हैं। लेकिन मुझे सिवा तुम्हारे कोई नहीं रक्षक नहीं। यह बात शत प्रतिशत सच है। अविलंब आकर मेरी रक्षा करो। इस प्रकार कवि अपनी असमर्थता और भगवान की समर्थता को व्यक्त करता है।

जब भक्त तप, जप, साधना करने पर भी सफलीभूत नहीं हो पाता तब सर्वात्मन को अर्पण कर देना है। यही भाव इस संकीर्तन में है। हे वेंकटाद्रिनाथ। मैंने कहाँ तप किया था क्यों कि मैं अपनी ही जन्म भूमि का पालन करने में असमर्थ बनकर ढूँढ रहा हूँ। यह कहाँ का तप। जो अपनी आत्मा को न समझकर भटक रहा हूँ। यह कहाँ का तप। जो मुक्तिपथ का अन्वेषण कर असफल बनकर रो रहा हूँ। वास्तव में मैं अज्ञान में था, हे स्वामी। मैं कुछ नहीं हूँ और मेरा कोई तप कुछ नहीं। तुम्हीं मेरी माता-पिता, गुरुदाता, साथी, बंधु सब कुछ हो। मुझे इस दुखार्णव को पार करने का ज्ञान मंत्रोपदेश करो। इस पद में संस्कृत के श्लोक का ही अनुकरण हुआ। ——

त्वमेव माताच पिता त्वमेव

त्वमेव बंधुश्च सखात्वमेव

त्वमेव विद्याद्रविणम्

त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

— कवि को यह समस्त जगत प्रेम से परिपूर्ण साम्राज्य की भांति अवगत होता है। उस

प्रेम साम्राज्य में वह अपने को एक अकिंचन नागरिक मानता है। हे स्वामी! यह सारा चराचर जगत तुम्हारा प्रेम साम्राज्य है। मैं इस में एक अकिंचन नागरिक हूँ। समस्त प्राणी तुम्हारे इस 'प्रेम' साम्राज्य के पात्र हैं। फिर भी मैंने मूर्खतावश इसका रहस्य नहीं समझा। विषयलोलुप बनकर कुपथ पर चलकर अपना सर्वस्व नष्ट किया। अब मेरी आँख खुली है। तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम करुणावत्सालय हो, आनंद कंद हो, प्रेम समुद्र हो। कम से कम अब तो इस दीन पर दया कर प्रेम-भिक्षा प्रसाद प्रदान करो। मेरे अवगुणों की ओर ध्यान न दो।

इस प्रकार वेंकट पार्वतीश अपने भाव संकीर्तन में, विविध भावों से उस अज्ञात निर्गुण और सगुण रूप की आराधना करते हुए और भाव सुमनों से अर्चना करते हुए दिखाई देते हैं। इन संकीर्तनों में भावों का प्रवाह है, आत्मग्लानि है, आत्मनिवेदन है, हृदय की व्याकुलता है, तड़पन है, कसक है और हूक है। आधुनिक तेलुगु काव्य-धारा में इस भाव संकीर्तन ने नूतन भाव-क्षेत्र को प्रस्तुत किया है। वैसे तेलुगु नीति-काव्यों का त्यागराजा, क्षेत्रय्या, रामदास आदि ने 'कीर्तन साहित्य से संपन्न बनाया पर आधुनिक काल में संकीर्तन साहित्य के विकास में वेंकट पार्वतीश के भावसंकीर्तन का योगदान महत्वपूर्ण है और चिर स्मरणीय है। यह काव्य अपने नाम के अनुरूप है, सार्थक है और चरितार्थ है।

<u>मातृमंदिर</u> :—

वेंकट पार्वतीश कवियों ने अनेक बंगाली उपन्यासों का अनुवाद किया है। 'मातृ-मंदिर' नामक यह उपन्यास उनकी स्वतंत्र रचना है। यह पुस्तक 1919 में पहली बार प्रकाशित हुई है। मातृदेश के प्रति अपनी अतिशय अनुराग का प्रदर्शन ही 'मातृमंदिर' है। देश की सर्वतोमुख अभिवृद्धि के लिए यह उपन्यास पथप्रदर्शन करती है। ऐसा

लगता है कि मानों पथ प्रदर्शन करने के लिए ही यह पुस्तक रची गयी है। बाल-विवाह, जातिभेद, अस्पृश्यता, पशुबलि आदि देश को विनाश करनेवाले व दुर्गुणों का खंडन किया गया। अहिंसा, सत्यनिष्ठा, देशभक्ति, सर्वजन सौभ्रातृत्व, वसुधैव कुटुंबकम आदि उत्तम गुणों का उद्‌बोधन किया गया है। सत्यासत्य के संघर्ष में असत्य सत्य को पहले दबाती है पर अंत में 'सत्यमेव जयते' जो भारतीय पुनीत आदर्श है, उसका सम्यक निरूपण किया गया है। इसके स्त्री पात्र ज्ञान, विनय, सौशील्य आदि सद्‌गुणों से संपन्न है और भारतीय स्त्री गौरव प्रदर्शित किया गया है।

अभ्युदय के नाम पर प्राचीनता का तिरस्कार नहीं किया गया है। वैदिक-धर्म को पुनरुज्जीवित करके एक एक बाल विधवा पुनर्विवाह का तिरस्कार करती है। प्रगतिशील विचार को इस उपन्यास के निर्वाह में विलक्षणता दिखाई पड़ेगी। लेकिन वह ऐसा समय था जब कि बालविधवाओं की संख्या बहुत अधिक रहा करती थी। जो लोग केवल विवाह को ऐहिक बंधन के रूप में स्वीकार करते अपितु परमार्थ पथ का पवित्र सोपान मानते हैं। ऐसे लोग इस घटना की गंभीरता से समझ सकते हैं। इस उपन्यास में एक स्त्री पात्र इस प्रकार कहती है — ''हम दोनों धर्म का पालन करने के लिए दांपत्य जीवन में प्रवेश कर चुके हैं न कि बड़े बड़े सुरम्य भावनों के लिए या सुंदर नगरों के लिए।''

यह उपन्यास प्राचीन परंपराओं रूढ़ियों और अशिष्ट सामाजिक व्यवहार पर प्रकाश डालता है। वैसे इस उपन्यास का कथानक बहुत संक्षिप्त है। लेकि- लेकिन इसकी कथा ऐसी रोचक शैली में प्रस्तुत की गई है कि दांतों तले उँगली दबाना पड़ता है। उपन्यासकार भावुक है, सहृदय है और है रसज्ञ। इस उपन्यास की प्रधान पात्रा जो एक कन्या है वह अपने प्रियतम के लिए अत्यंतानुताप करके उसका अन्वेषण करती है

दिखाई गयी है। लेकिन प्रियतम के लिए प्रिया के अन्वेषण के पीछे उनका मानसिक संबंध कैसा है वह इस में नहीं दिखाया गया है। अन्य जो पात्र है उनका चित्रण लेखक अपनी तौर पर किया गया है। किसी भी पात्र का चित्रण गहराई से उतरकर नहीं किया गया है। एक प्रकार से पात्रों का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म विश्लेषण नहीं हुआ है।

यह उपन्यास फिर भी अपने में विलक्षण है। आलंकारिक भाषा, कोमलकांत पदावली, मंजुल वाक्य विन्यास, चित्रमय वर्णन आदि के कारण यह उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय बन पडा है।

<u>एकांत सेवा — एक अध्ययन</u> :—

आधुनिक तेलुगु की काव्यधारा में सब से प्रमुख शैली का उदय सन् 1920 के आस पास हुआ है। उस काल की कविताओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन कवियों पर अंग्रेजी के वर्ड्सवर्थ, शैली और बंगला के कवींद्र रवींद्र का बहुत प्रभाव पडा और उस प्रभाव को इन कवियों ने कहीं कहीं स्पष्टतः व्यक्त कर दिया। इस प्रभाव के कारण प्रकृति के संबंध में कवियों का दृष्टिकोण मूलतः बदल चुका था। काव्यजगत् में नवीन शैलियों, अभिव्यक्तियों और प्रतीकों का समावेश हो गया। इन नये प्रभावों को लेकर जो कविताएँ तेलुगु में लिखी गयी वे भाव कविता के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस धारा में अग्रगण्य हैं वेंकटपार्वतीश कविद्वय का 'एकांत सेवा' काव्य। प्रभात वेला में विवाह आदि के समय लोगों को जागरण गीत के रूप में नवयुगारंभ में इस काव्य को गाया जाता था। भाषा, शैली, कल्पना, भावों में पूर्व प्रचलित का आदर करते हुए गीतांजलि एवं वैष्णव साहित्य के प्रभाव को स्वीकार किया गया। इस कविद्वय ने अपने काव्य में नवीन शैली प्रचलित की। यह 'एकांत सेवा' काव्य सर्व-प्रथम सन् 1922 में प्रकाशित हुआ। युवक अपनी गोष्ठियों में इसके गीतों को बडे प्रेम से गाते थे।

एकांत सेवा में प्रतिपाद्य :—

प्रभात वेला में प्रिया (जीवात्मा) अत्यंत श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम से अपने हृदयेश्वर के बारे में उच्चःस्वर से कोयल बनकर गाती है, कल्याणप्रद गीतों में अवधानवती प्रिया पर कल्याणमूर्ति रुठ जाता है, उस तीव्र विरह के संताप में तीक्ष्ण विरहिणी अपने प्रियतम के संदर्शन के लिए उनको पुकार से प्रार्थना करती है। आत्मेश से संयोग के बिना वह अब एक क्षण भी नहीं रह पाती। अपने प्रेमस्वरूप प्रियतम को पकड़ लाने के लिए प्रणय वन में पद्म रथ पर आरूढ़ होकर भ्रमर के मार्ग दिर्शन में निकलती है। सावधान पाविद्वय से निर्निमिष नेत्रद्वय से, गदृढ चित्त से स्वामी की पूजा के लिए विविध उपकरणों को जुटाती है। अंत में उसे पुण्य योग सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस सिद्धि की कथा युग युगों से प्रचार में है। यह गीत चिर गीत है। यह नित्य नूतन रूप में गाया जाता है। वह (जीवात्मा) पुनः पुनः उसी गीत को गाती है।

एकांतसेवा में प्रकृति :—

वेंकट पार्वतीश कवि प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। वे प्रकृति के अंक में खेलते हैं, सोते हैं, बोलना सीखते हैं, उसका दूध पीते हैं, उनका आलिंगन करते हैं, उसका आलिंगन करते हैं, उसका मंदहास इनके लिए स्वच्छ के प्रति इनका प्रेम अनन्य है। एकांतसेवा में प्रकृति चित्रण का क्षेत्र विशाल है। ये कवि समस्त प्रकृति के दृश्यों का प्रयोग कर चुके हैं।

एकांत सेवा — जीवन का दर्पण :—

यदि काव्य को जीवन की व्याख्या माने तो एकांतसेवा सचमुच वेंकटपार्वतीश के जीवन का दर्पण है। ये जिस भाव योग की साधना करते थे और जिन आध्यात्मिक

अनुभूतियों के आनंद का आस्वादन करते थे उनका इस काव्य में प्रतिपादन हुआ है। इनका क्या ये बड़े प्रेमी थे, अनुरागी थे, ये बड़े भावुक। भावावेश में इनका हृदय द्रवीभूत हो जाता था। भावना से जिस प्रकार शब्द, स्पर्श, रस और गंध आदि का भी ध्यान हो जाता है। ध्यान में (प्रियतमा प्रियतम की वंशी की मधुर ध्वनि सुन सकते हैं, उनके रूप को निरख सकते हैं, उनके अधरामृत का पान कर सकते हैं, उनके स्पर्श का पुलक पुलकित हो सकते हैं। राधिका की दृष्टि में ये सब बातें सत्य हैं और भावना जनित हैं। एकांतसेवा में इस प्रकार कवियों का जीवन ही प्रतिबिंबित है।

एकांतसेवा में मधुर भक्ति :—

एकांत सेवा में जिस भक्ति भावना का प्रतिपादन हुआ है, वह मुख्यतः मधुर भक्ति है जिसे मधुर चाँदनी है, उनकी बोली इनके लिए कोकिल का आलाप है। उस का वदन ही इन के लिए चंद्रमंडल है। उसकी दृष्टि ही इनके लिए तारे हैं, वही इनका अपना सर्वस्व है, वह गाती है, गरजती है, हँसती है, आलिंगन करती है, कभी दंड देती है फिर भी ये उसे नहीं छोड़ते। सुविकसित कमल, हरे भरे वृक्ष, फूल, पवन, भ्रमर, तारे, कल कलकल निनाद करती बहनेवाली नदियाँ इनके अपने अभिन्न बंधु हैं। ये प्रकृति को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। अँग्रेजी कविता में वर्ड्सवर्थ शेली और बंगला में रवींद्र का प्रकृति के प्रति जो संबंध है, वही तेलुगु के एकांतसेवा काव्य में है। इनकी कविता निर्झरिणी की भाँति है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर ये मुग्ध हो जाते हैं किंतु इनके लिए प्रकृति चेतना का आधार ही नहीं है। दोनों कवि प्रकृति के सभी व्यापारों में एक अनंत शक्ति को प्रतिच्छायित होते देखते हैं और यह प्रतिच्छाया ही इनके काव्य के लिए विशेष महत्व रखती है। वेंकटपार्वतीश के कारण तेलुगु कविता में प्रकृति रमणीय, अनंत और अज्ञात शक्ति के प्रभाव से आलोकित

हो उठी है और यह आलोच्य कवियों का ध्यान सामान्य मानवीय प्रेम से हटाकर एक रहस्य की ओर आकर्षित करता है। दोनों कवि उस अनंत का अनुभव तो करते हैं पर उसे पहचानने में असमर्थ रहते हैं। प्रकृति पुष्प में वही गंध बना हुआ है। सब में वही भरा है। सब में वही अपनी अनोखी रूप-माधुरी की झाँकी दिखा रहा है। सर्वत्र प्रेम-ही-प्रेम, आनंद ही आनंद है। समस्त विश्व प्रेममय, आनंदमय और रसमय है। सब कुछ आनंद से और सौंदर्य-माधुर्य से भरा है। दृश्य-द्रष्टा सभी मधुर है, द्रुम-कुसुम सभी हैं मधुर हैं। उस परमानंद-रस-सुधामय मधुराति मति का सभी कुछ मधुर है — मधुराधिपते रखिल मधुरम। मधुवाता ऋतायते मधु क्षरंति सिंधवः, माध्वीर्नः सन्त्वौषधी, - - - मधुमत् पार्थिवं रजः "सर्वत्र मधु ही-मधु है।" मधुर मोहन मूर्ति के मंदहास में पुष्प कुंजों का हास है। सौरभपूर्ण प्रसन्नता का हास है, गंगा देवी का मृदुमधुर हास है। पूर्णिमा की रात का मधुर मंदहास है, ताराओं की तरल हँसी है, सौदामिनी की सरल हँसी है, उस मधुर हास विकास में समस्त प्रकृति आनंदित है। मधुर चंद्रिका में मधुरामृत मधुरामृत में मधुर हास, उस में मधुर भाव, भाव में मधुर रूप, मधुर रूप में मधुर तेज, उस में मधुर मोहन मूर्ति विराजमान है। कवि सर्वत्र मधुरानुभूति होती है। कवि ने इस अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति का आस्वादन किया उसे आस्वादन योग्य बनाना ही एकांत सेवा का उद्देश्य है।

एकांतसेवा — अद्वैत भावना :—

इस में अद्वैत भाव का प्रतिपादन हुआ है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है। दोनों में घनिष्ट संबंध है। एक दूसरे को छोड़कर नहीं रहते। जीवात्मा उस भाव अथवा मधुर रस कहा करते हैं। मधुर रस भक्ति की अन्यधाराओं जैसे शांत, दास्य, सख्य या वात्सल्य से भिन्न है। शांत के अनुसार भक्त भगवान के सुगम रूप का

अनुभव कर उनका रूप चिंतन किया करता है और दास्य के अनुसार उनके ऐश्वर्य-चिंतन में मग्न रहकर उनका गौरव गान करता रहता है। इसी प्रकार 'सख्य' के अनुसार वह भगवान को किशोरावस्था का सखा मानकर, उन से न्यूनाधिक अनियंत्रित प्रेम करने लगता है और वात्सल्य के अनुसार उनके बाल रूप भी अधिक मुग्ध होकर उनकी बाल लीला का रसास्वादन किया करता है। किंतु मधुर रस के अनुसार भक्त उनको अपने पति व सर्वस्व के रूप में देखता है और इसी कारण उनके साथ उसका संबंध अत्यंत घनिष्टता का हो जाता है। कहते हैं कि जो आर्ति व गूढ़ प्रेम एक युवती के हृदय में, किसी युवक को देखकर जाग उठता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण भक्त लोग श्री भगवान कृष्ण को, स्थिर चित्त के साथ, पत्नीभाव से ही नित्य भजन करते हैं। स्त्री पुरुष की ऐसी ही आसक्ति के वे संबंध में श्रृंगार रस का भी प्रादुर्भाव होता है। अतएव मधुर रस के भी भाव, विभाव, अनुभावादि प्रायः उसी प्रकार के होते हैं जैसे श्रृंगार रस के। किंतु इन दोनों में महान अंतर भी पाया जाता है। श्रृंगार रस का विषय सांसारिक होने से जड़मूर्ति रूप है किंतु मधुर रस का विषय अलौकिक एवं स्वयं भगवान स्वरूप है। अतएव श्रृंगार के स्थाई भाव रति का संबंध यदि स्थूल या लिंग शरीर से है तो मधुर रस, एक प्रकार से स्वयं आत्मा का ही धर्म है। मधुर रस का अनुभव, श्रृंगार रस के समान होने पर भी वस्तुतः इंद्रियातीत है। श्रृंगार रस मधुर रस में परिणत हो सकता है। यदि भक्त की स्थिति उस प्रकार की हो जाय जैसे ब्रज की गोपियों की थी। ब्रज की गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम पराकाष्ठा को पहुंच गया था। एकांतसेवा में भी इसी प्रकार के पवित्र भाव का प्रतिपादन हुआ है। आकाश में वही शब्द है। वायु में वही स्पर्श है, अग्नि में वही ज्योति है, वही रस है और परमात्मा के अन्वेषण में रत है। इसी भाव को इस पद में स्पष्ट हुआ है — "हे हृदयाधिनाथ! अगर तू शांति का अनंत समुद्र

है तो तू सुंदर राजहंस है। अगर तू षोडसकला प्रपूर्ण चंद्रमा है तो मैं निर्मल चंद्रिका हूँ। अगर मैं मनोकल्पवृक्ष हूँ तो तू भ्रमर है। यदि तू जलद है तो मैं निर्मल सौदामिनी रेखा हूँ। यदि मैं नंदनोद्यान की कनलता है तो तू रसराज शृंगार रस रसिक शिरोमणि माधव है। यदि तू दिव्य मूर्ति है तो मैं हूँ दीप्ति। अब तू क्यों छिपता है। कवि समस्त प्रकृति में उस परमात्मा का प्रेम स्वरूप प्रतिबिंबित देखता है। — "हे प्रणयाधिनाथ। आनंद के नंदनवन में जहाँ प्रणय के झरने झरझर झरने हैं, प्रणय की फलाएँ बढ़ती है, प्रणय पल्लव उत्पन्न होते हैं। प्रणय की कलिकाएँ अंकुरित होती हैं। प्रणय के पुष्प विकसित होते हैं। प्रणय की सुगंधि व्याप्त होती है, प्रणय के फल फलते हैं। जहाँ प्रणय ही प्रणय सर्वत्र रहता हो, वहाँ हम दोनों देपती बनकर प्रणय लीलास्मृति तरंगों में प्रणय के झूलों पर अनुराग में झूलते, प्रेम पुराने सिद्धांतों का नवीनीकरण है ~~एको-~~ एकांत सेवा में नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन नहीं हुआ है। केवल पुराने सिद्धांतों का नवीनीकरण हुआ है। इस में लौकिक भावों का वर्णन नहीं हुआ है। इस में लौकिक भावों का वर्णन नहीं हुआ है। बल्कि अलौकिक भावों का चित्रण हुआ है। कवि ने इसे महानता केलिए नहीं लिखा केवल 'स्वान्तः सुखाय' लिखा है। एकांतसेवा को कवियों ने हम लौकिक प्राणियों के लिए लिखा है। इस काव्य में एक ओर आध्यात्म तत्व का दूसरी ओर काव्यतत्व का प्रतिपादन हुआ है। ईश्वर को मानव के अभिन्न प्रियतम और हितैषी के रूप में दिखाया गया है। इसके पूर्व साहित्य में जिस राधा कृष्ण के प्रेम का और नरनारायण के आदर्श स्नेह का वर्णन हुआ है, उसी भाव को एकांतसेवा में कविद्वय ने नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

<u>एकांतसेवा — काव्य-लक्षण</u> :—

एकांतसेवा में उत्कृष्ट काव्य के सभी लक्षणों का समावेश हुआ है। विषय का विस्तार है, पदलालित्य में सुस्पष्टता है, वर्ण-मैत्री है, अपूर्व चमत्कार है। काव्यगत

वस्तु महोन्नत है। गाने का अद्भुत है, अपूर्व है, विलक्षण है। वेदांत भावों को भाषा में लिखना बहुत कठिन है। गीतों में तथा पदों में बतलाना और कठिन है। उस असाध्य को वैंकटपार्वतीश ने एकांतसेवा में सुसाध्य बनाया। वेदांत के दुरूह तत्व को सरस शैली सरल भाषा में सर्व साधारण जनता के अनुकूल बनाया। काव्य चमत्कृति एकांतसेवा का प्रधान गुण है। इसके प्रत्येक गीत में चमत्कार दीखता है। अलंकारों की मंजुल छटा वर्णनीय है। इनकी काव्यत्व में आध्यात्मिक तत्व निहित है। वेदों में, उपनिषदों में, गीतों में जिस उदात्त तत्व की अभिव्यंजन हुई है, उसी को दूसरे शब्दों में एकांतसेवा में स्पष्ट किया गया है। इसके अंत में गाना में प्रतिपादित सर्व धर्मात् परित्यज्य ममेकं शरण व्रज'' सिद्धांत का उल्लेख मिलता है। अंत के पदों में आत्म निवेदन है। जीवात्मा प्रियतम परमात्मा के समक्ष अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। कवि आशावादी है। उनको विश्वास है कि उनकी पुकार उनके प्रियतम सुनेंगे। यह भी वे मानते हैं कि इस विशाल विश्व में जो व्यक्ति जितना अधिक वेदना का अनुभव करता है वह उतना ही अधिक सुखी होता है। ''सर्वस्व त्याग में ही अनंत फल की प्राप्ति होती है।'' यह सिद्धांत हमारे लिए नया नहीं है। भगवान ने कहा भी है —

''सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीतिच याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतं मम।''

— अर्थात् जो एक बार मेरी शरण में आकर ''मैं आपका हूँ'' कहता है, उसे सर्व भूतों से अभय कर देता हूँ, यही मेरा नियम है।''

इस काव्य में भगवान के प्रति भक्त की प्रतीक्षा है, व्याकुलता है, तड़पन है छटपटाहट है, बेचैनी है। प्रतीक्षा में सुख मानता है। उसके विचार में निर्गुण सगुण का बंधन नहीं है, दोनों का मंजुल समन्वय है। इस अनंत सत्ता का अस्तित्व अन्तस्तल

सर्वत्र व्याप्त मानता है। सागर गर्भ में, समस्त भूमंडल में, आकाश में, सर्वत्र वह अपने प्रियतम की खोज करता है। वस्तुतः स्तुति गेया दिव्य ज्ञान का अक्षय भंडार है। लौकिक दृष्टिकोण से इसे पढ़ना नहीं जानते। आलोचक प्रवर डॉ. कृष्णमाचारी ने इस काव्य की भूमिका में स्पष्ट ही कहा है कि — "यह काव्य भागवत के समान पठनीय है, अनुकरणीय है और अ मान्य है।" यदि लौकिक बुद्धि से इसे पढ़ेंगे तो निराशा ही होना पड़ता है। अंत में आलोचक ने कहा है कि — "यह आलोचन से परे है।" जिस श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से बंगाल के लोग रवींद्र की गीतांजलि का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार आंध्र भाषा के महाकवियों, भक्तों का स्तुतिगेया काव्य पठनीय, मनन करने योग्य और चिंतनीय है। अंत में ये भक्त कवि उस प्रभु के पादपद्मों में अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं — अंतिम पद का भाव चिंतना है।

* * *

४ · ७ · ८

भारतीय धर्म-साधना में भक्ति-भावना

4·0·0
भारतीय धर्म-साधना में भक्ति-भावना

भक्ति का शब्दार्थ :—

भारतवर्ष में अतिप्राचीन काल से धर्म साधना के तीन प्रधान मार्ग प्रचलित हैं। कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार कभी किसी मार्ग की प्रधानता रही है, कभी और किसी की। यदि किसी समय ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य हुआ। ऐसा भी समय आया जब कि भक्ति के साथ ज्ञान और कर्म का सामंजस्य स्थापित किया गया और भक्ति का स्थान सर्वोपरि समझा गया। किंतु किसी समय किसी एक मार्ग की ही अत्यंत वृद्धि हुई तो समाज में विषमता और अशांति उत्पन्न हुई। इस विषमता को दूर करने के लिए अनेक आंदोलन चलाये गये जिनके फलस्वरूप नये नये भक्ति संप्रदाय प्रवर्तित हुए। हमारे देश में भक्ति की यह परंपरा बराबर जारी रही।

भक्ति शब्द संस्कृत के 'भज सेवायां' धातु से बनाया गया है जिसका अर्थ है 'भगवान की सेवा करना।'। भक्ति शास्त्र के आचार्यों ने भक्ति शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की है। शांडिल्य भक्ति सूत्र में कहा गया है कि — 'ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है, नारद भक्ति सूत्र में बताया गया है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।[2] श्रीमद् भागवत् में भक्ति का लक्षण यों कहा गया है — मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ट धर्म वही है जिस के द्वारा भगवान कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति ऐसी हो जिस में किसी प्रकार की कामना न हो। जो नित्य निरंतर बनी रहे। ऐसी भक्ति से आनंद

- -

1) परानुरक्तिरीश्वरे — शांडिल्य भक्ति सूत्र 2) नारद भक्ति सूत्र

स्वरूप भगवान को उपलब्धि करके भक्त कृत कृत्य हो जाता है।"[1]

भक्ति रसायन में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गयी है — मन की उस वृत्ति को भक्ति कहते हैं जो आध्यात्मिक, साधना से द्रवीभूत होकर ईश्वर की ओर प्रवाहित होती है।[2] आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने भक्ति पर विचार करते हुए कहा है "भक्ति मार्ग अपने विशुद्ध रूप में धर्म भावना का भावात्मक या रसात्मक विकास है।"[3]

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति भगवान के प्रति अनन्यमयी एकांत प्रेम का ही नाम है।[4] इस प्रकार कुछ प्रमुख आचार्यों ने भक्ति शब्द की व्याख्या की है। इन से यह स्पष्ट हुआ है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।

<u>भक्ति के प्रकार</u> :—

भक्ति को आचार्यों ने दो भागों में विभाजित किया है — 1) गोपी भक्ति और 2) पराभक्ति। यह विभाजन भक्ति के साधन और साध्य पक्ष के आधार पर किया गया है। मन की एकाग्रता से भगवान का नित्य निरंतर श्रवण, कीर्तन, भजन, व आराध्य आदि भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान में परानुरक्ति उसका साध्य पक्ष है। श्रीमद् भागवत् के सप्तम स्कंध में साधना पक्ष को ध्यान में रखकर भक्ति के नौ भेद बताये गये हैं जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। ये नवधा भक्ति हैं — श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन।[5] प्रथम तीन श्रवण कीर्तन और स्मरण श्रद्धा और विश्वास की वृत्ति के सहायक है। पादसेवा, अर्चना और वंदन रूप संबंधी साधन हैं और दास्य और सख्य तथा आत्मनिवेदन भाव संबंधी साधन है। अंतिम आत्मनिवेदन भाव संबंधी साधन हैं। अंतिम आत्मनिवेदन इस

---

1) भागवत — 1—2—6 2) भक्ति रसायन — 1—3

3) सूरदास — रामचंद्रशुक्ल पृष्ठ 45 4) मध्यकालीन धर्म साधना — पृष्ठ — डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

5) भागवत — सप्तम स्कंध अध्याय — 5 श्लोक : 23

नवधा भक्ति की चरम परिणति है। यही आत्म निवेदन आगे चलकर आत्म समर्पण में परिणत होता है जिस में शरणागति का भाव सर्वोपरि रहता है।

चैतन्य मतावलंबी श्री रूप गोस्वामी जी ने अपने भक्ति रसामृतसिंधु तथा उज्वल नील मणि नामक ग्रंथों में भक्ति शास्त्र के गूढतम सिद्धांतों का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया है। उन्होंने भक्ति को भी रस मानकर विस्तार से उसकी व्याख्या की है। उनके अनुसार भक्ति रस दो प्रकार के होते हैं — 1) मुख्य भक्ति रस 2) गौण भक्ति-रस। मुख्य भक्ति रस के अंतर्गत उन्होंने पाँच रस माने हैं — 1) शांत 2) प्रीति 3) प्रेम 4) वात्सल्य 5) मधुर। गौण भक्ति-रस के सात भेद बताये हैं — जैसे, हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स। भगवान मेरे पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ अथवा परमात्मा मेरे प्रेमी है, मैं उनकी प्रेमिका हूँ। ऐसा समझ कर भक्ति करना मधुरा भक्ति कहलाती है।

<u>भक्ति के साधना</u> :—

भगवान में भक्ति के नाना साधनों को बडे विस्तार से वर्णन किया है —जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता है वह मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखते निरंतर मेरे गुण लीला और कर्मों का संकीर्तन करे। मेरी पूजा में अत्यंत निष्ट रखे और स्तोत्रों के द्वारा मेरी स्तुति करे, मेरी सेवा पूजा में प्रेम रखते और सामने साष्टांग प्रणाम करे। मेरी भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढकर करे और समस्त प्राणियों में मुझ ही को देखें। अपने प्रत्येक अंग की चेष्टा भी मेरे लिए ही करे। वाणी से मेरे ही गुणों का गायन करे और अपना मन भी मुझे ही अर्पित कर दो। मेरी प्राप्ति की कामना के अतिरिक्त सारी कामनायें छोड दें। मेरे लिए धन, भोग और प्राप्त सुख का भी परित्याग कर दे और जो कुछ यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत और तप किया जाय वह सब मेरे लिए ही करे। जो मनुष्य इन धर्मों का पालन करते हैं और

मेरे प्रति आत्म निवेदन कर देते हैं और मेरे हृदय में मेरी प्रेममय भक्ति का उदय होता है।[1]

भक्ति की श्रेष्ठता :—

भक्ति की उत्कृष्टता सर्वत्र स्वीकार की गयी है, क्यों कि भक्ति का केवल परम प्रेम रूपा और अमृत रूपा है। बल्कि जिसने भक्ति को प्राप्त किया है वह सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है।[2] स्वयं फलरूपा होने के कारण भक्ति के सिवा और कोई परमार्थ नहीं। कर्म, ज्ञान, योग से भक्ति बड़ी है क्यों कि वह सब से अधिक सरल है। अन्य मार्ग इतने तीव्र, टेढ़े मेढ़े अरक्षित हैं कि कभी कभी उन पर चलना असंभव हो जाता है। किंतु भक्ति मार्ग में स्वयं भगवान पथ प्रदर्शक हैं, रक्षक हैं। भगवान के चरणों का प्रकाश सदा मार्ग को उज्वल और प्रशस्त करता रहता है। इसलिए किस बात का भय? भक्त को कुछ करना है तो इतना ही है कि भगवान के प्रति उसके प्रेम में किसी प्रकार की कमी न हो। अनन्य भक्त को ही भगवान के दर्शन होते हैं जो न वेद से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही संभव है।[3] श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि अपने हृदय में कुछ बसाकर मेरी शरण में आ जाओ। मेरी कृपा-दृष्टि से तुम्हें परमशांति प्राप्त होगी। मन को पूर्णतया मुझ में लीन करो। मेरी उपासना करो। मेरी पूजा और मेरे लिए ही यज्ञ करो। तुम अवश्य मोक्ष गति को प्राप्त करोगे क्यों कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो। समस्त धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त करके मोक्ष दूँगा। श्रीकृष्ण चैतन्य की भक्ति राधा भाव की कहलाती थी। अर्थात् वे स्वयं राधा स्वरूप होकर श्रीकृष्ण के प्रेम में महाभाव का अनुभव करते थे। यह मधुर भक्ति वल्लभ संप्रदाय की मधुरा

- -

1) श्रीमद् भागवत् — 11, 19, 20, 24   2) नारद भक्ति सूत्र

3) श्रीमद् भगवद्गीता — अध्याय—11, श्लोक — 53, 54

भक्ति से मिलती जुलती है।

महाप्रभु चैतन्यदेव ने भक्ति पद्धति में द्वैत और अद्वैत का बड़ा सुंदर समन्वय किया है और भगवन्नाम जप तथा संकीर्तन को भक्ति का मुख्य और सरल उपाय माना है। उन्होंने राधा भाव को सब से ऊँचा भाव बतलाया। उनके उपदेश का सार इस प्रकार है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन का अधिक से अधिक समय भगवान के सुमधुर नामों के कीर्तन में लगाये जो अंतःकरण की शुद्धि का सब से उत्तम और सुगम उपाय है। कीर्तन करते समय वह प्रेम में इतना मग्न हो जाय कि उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहाने लगे। उनकी वाणी गद्गद् हो जाय और शरीर पुलकित हो उठे। भगवान्नाम का कीर्तन करनेवाला अपने को तृण से भी छोटा समझे, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बने और स्वयं अमानी होकर दूसरों को मान दे। भगवन्नाम के उच्चारण में देशकाल का बंधन नहीं। जो जहाँ जब चाहे भगवन्नाम का उच्चारण कर सकता है। भगवान ने अपनी सारी शक्ति और अपना सारा माधुर्य अपने नामों के अंदर भर दिया है। यों तो भगवान के सभी नाम मधुर और कल्याणकारी है।

भक्ति की इसी पृष्ठभूमि पर कवींद्र रवींद्र ने अपनी गीतांजलि की रचना की है। वेद, उपनिषद् और भक्ति रसामृत सिंधु आदि ग्रंथों की भावना की लौकिक रूप कल्पना ही गीतांजलि है। रवींद्र ने अपनी गीतांजलि में इसी भक्ति भावना और परंपरा का मूर्तीकरण किया है। आधुनिक भारतीय भाषाओं और साहित्यों पर कवींद्र रवींद्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। तेलुगु में वेंकटपार्वतीश कवि उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। यह प्रभाव 'एकांतसेवा', उनकी जो प्रौढ कृति है उस में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। भावना, विचारधारा और कल्पना की दृष्टि से एकांतसेवा गीतांजलि के बहुत ही निकट है।

* * *

5·0·0

गीतांजलि और एकांतसेवा: एक तुलनात्मक अध्ययन

5·0·0

गीतांजलि और स्कोतसैवा — स्क तुलनात्मक अध्ययन

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में युग विधायक शक्ति ने जिस साहित्य क्रांति का सृजन किया उसके पोषण का उत्तरदायित्व कवींद्र रवींद्र ने ग्रहण किया। साहित्य क्षितिज पर बंग भाषा की इस अप्रतिम विभूति के उदय होते ही आधुनिक साहित्य की वह प्रथम उन्मेषवेला आलोक पूर्ण प्रभात में बदल गई। बंग भाषा और साहित्य के जगत् में कवींद्र रवींद्र का आगमन वस्तुतः स्क युगांतरकारी घटना है। भारतीय साहित्य के उत्कर्षोन्मुख जीवन में जो शैथिल्य भर गया था। कवींद्र रवींद्र को पाकर उसने पुनः नव्य स्फूर्ति और गतिशील चेतना का रूप लिया। रवींद्रजी मानों भारतीय साहित्य कानन में ऋतुराज बसंत थे। उनके आगमन पर नये भाव प्रसून खिल उठे। नई विचार-कलिकाएँ प्रस्फुटित हुईं, साहित्य विटपों से नई शाखाएँ फूट पड़ीं और नई चेतना की हरी-भरी कोंपलों से लद गईं। समस्त भारतीय साहित्य सुस्थिर और सुदृढ़ कदमों के साथ निश्चित आदर्शों और निश्चत ध्येय का संबल लेकर विकास की ठीक राह पर अपने नायक के पीछे चलने लगा।

वस्तुतः यह युग भारतीय जन-मानस के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण की प्रत्यूष वेला है। हमारी सभ्यता में जो तत्व जड़ हो चले थे, कवींद्र ने उन्हें जड़ सहित उखाड़ फेंक दिया। भारतीय जीवन पथ में व्याप्त मलिन अंधकार को दूर कर अपनी अलौकिक ज्योति से प्रकाश प्रदान किया। हमारी जातीय जीवन नौका को स्क महान लक्ष्य की ओर ले चलनेवाले सक्षम कर्णधार होने का गौरव प्राप्त किया। जब भारत विदेशी दास्य शृंखलाओं में जकड़ा हुआ था, तब कवींद्र भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का गुण गान कर उसकी महत्ता की प्रतिष्ठा विश्व के कोने कोने

में थी।

रवि बाबू का जन्म 2 मई, सन् 1861 में हुआ। यह समय बंगाल में साहित्यक नवंत का माना जाता है। आगे चलकर इस वसंतश्री का पुनीत प्रभाव पूर्णतया रविबाबू में प्रस्फुटित हुआ।

इस सुखद वातावरण में उनने न जाने कितनी बार झिलमिल तारों का प्रकाश पूर्ण विकसित चंद्र बादल के छोटे-छोटे उड़ते सफेद टुकड़े, खिले बिहँसते पुष्प, पत्ते वृक्ष, पक्षी, जानवर आदि को देख उनके गर्भ में पैठ जाने की विफल चेष्टा की थी और भगवत्सृष्टि की अलौकिकता पर उनका मन न जाने कितनी बार विस्मय-विमुग्ध हो उठा था। ज्यों ज्यों उनकी आयु बढ़ रही थी — उनके जीवन में एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा हो रहा था जो कि एक चिंतनशील विश्व कवि के मस्तिष्क की प्रारंभिक पृष्ठभूमि थी।

उनकी माँ प्रायः अस्वस्थ रहती थी, पिता बाहरी कार्यों में व्यस्त थे जैसे कि प्रायः संपन्न घरों में होता है। बालक रवींद्र नौकरों के निरीक्षण में पल रहा था। नौकर उनको बाहर न जाने देते थे। घर की सीमा में ही उन्हें बैठने, खेलने, बड़े होने की इजाजत थी, अतएव एकांत में रहते-रहते उनकी प्रवृत्ति भी अंतर्मुखी होती जा रही थी, किंतु इस सबके बावजूद भी उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि कमरे के बाहरी दीवारों में बंद रहकर भी वह कल्पना के पंखों पर बैठकर सुदूरवर्ती देशों का भ्रमण करते। विश्व का कोलाहल उसे अपने एकांत, सूने हृदय में सुनाई पड़ता और और बाहर प्रकृति की सुरम्यता और फैलाव के वह चुपचाप खिड़की से झाँककर देखा करता। प्रकृति के मादक सौंदर्य का पर्यवेक्षण कर उसका हृदय आनंद से भर जाता, कभी उषाकाल की सुनहरी किरणों के संपर्क से चमचमाती ओस मुक्ताओं को निरख

उन में बालसुलभ कौतूहल जागृत होता, कभी नील विस्तृत धूली के किनारे, झूलते पत्ते और कोयल-सारिकाओं का उछल-उछलकर फुदकना, कभी अपने घर के बगीचे अथवा बेर, तारिका, रवींद्र के मन को मुग्ध करते थे। कल्पना के व्यूह में बंदी होकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनमें सतत जागरूकता एवं आत्मनिष्ठा बनी रहती।

रवींद्र ने मेरे बचपन के दिन' नामक पुस्तक में अपनी बाल्यावस्था के मोहक चित्र खींचे हैं। पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनकी आत्मा कोई बंधन न चाहती थी। नौकरों के कटु व्यवहार और शिक्षकों के अनुशासन से उनका मन विक्षुब्ध हो उठता। स्कूल का रुक्ष वातावरण उनके अनुकूल न था। क्लास में पढ़ाई चलती रहती और उनका मन-पंछी न जाने कहाँ-कहाँ विचरण करता रहता। फिर वे पढ़ाई से बचने के लिए तरह-तरह के बहाने ढूंढने लगे। वे चाहते थे किसी तरह बीमार हो जाऊँ और इस पढ़ाई से पिण्ड छूटे। सर्दी की ठंडी रात्रि में कभी खुली छत पर जा लेटते, कभी घुटने-घुटने जल में जा खड़े रहते और जूतों भिगोकर दिनभर घूमते रहते जिस से ज्वर हो जाय और स्कूल न जाना पड़े। मास्टरों और ट्यूटरों का भी दिन भर लगा रहता। बालक रवींद्र को क्षण भर खेलने, सोचने, साँस लेने तक का अवकाश न था। उनका मन विद्रोह कर उठता। आयु छोटे होते हुए भी उन में तीव्र अनुभूति शक्ति एवं गहरी संवेदनशीलता थी। शिक्षकों के समय वह हठ पर डालते।

रवींद्रनाथ के पिता महर्षि रवींद्रनाथ ठाकुर बहुत ही उदार और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हें निर्जन एकांत, शांत स्थानों में बैठकर चिंतन करते रहना अच्छा लगता था। पिता महर्षि का अपने पुत्र पर अनुग्रहपूर्ण स्नेह था, हिमालय के प्रयाण में उन्होंने उन्हें साथ ही रखा। पर्वत के सर्वोच्च शृंग पर एक कुटिया थी जिस में पिता पुत्र दोनों रहते थे। चारों ओर मनोरम, उल्लासमय वातावरण और चकल-

हिमगिरी पर सूर्य की किरणों का नर्तन और घनी डालियों में हवाई हलचलियाँ — ये दृश्य बालक रवींद्र के मन को आकर्षित कर लेते हैं। यहीं से उन्होंने प्रकृति में विचार होना सीखा और यहीं से उनके हृदय का सत्यं, शिवं, सुंदरम के साथ समन्वय हुआ।

बंगाल के बोलपुर जिले में महर्षि ने शांतिनिकेतन की स्थापना की थी, जहाँ वे आध्यात्म चिंतन और दर्शन ग्रंथों का अनुशीलन किया करते थे। रवींद्रनाथ ने यह स्थान बहुत पसंद किया और अपने पिता के साथ कुछ दिन वहाँ रहे। वहाँ की प्राकृतिक शोभा में वे अपने अस्तित्व को भुला देते और अपने हृदय दर्पण में इस विस्मयकारी अद्भुत सृष्टि के विराट रूप का दर्शन कर फूले न समाते। सात वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी सब से पहली कविता लिखी जिसे पढ़कर उनकी विलक्षण प्रतिभा पर सभी आश्चर्य चकित रह गये थे।

रविबाबू का जीवन कोरी काव्य रचना में ही नहीं बीता। उनके पूज्य पिताजी ने रविबाबू को जमींदारी का काम सौंप दिया। वे महर्षि की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। अतः वे अपने गाँव में चले गए। वहाँ गंगा के किनारे का वातावरण उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत अनुकूल पड़ा। उनकी रचनाओं में गंगा, तरी और धान के खेतों का अधिक वर्णन मिलता है। इस काल में अपनी प्रतिभा का प्रकाश खूब चमका और उन्होंने जमींदारी के काम के साथ-साथ बड़ी उच्च-कोटि के साहित्य की सेवा की। वहाँ से 'भारती' और 'साधना' नाम की पत्रिकायें भी निकलीं। उनकी 'सोनारतरी' गीतों की संग्रहात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई। सन्
१९   से   लगाकर   तक धार्मिक, सामाजिक , राजनैतिक उथल-पुथल का समय आता है। इस काल में उन्होंने धार्मिक काव्य लिखा और बहुत सा

समय शांतिनिकेतन में व्यतीत किया। धार्मिक काव्य के संबंध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह यह है कि उन्होंने वैष्णव कवियों का अनुसरण करते हुए भानुसिंह के नाम से कुछ काव्य लिखे। अनुकरण की उत्तमता के कारण लोग सहज में ही धोखे में आ गए। यहाँ तक कि डा० निशाकांत चटर्जी ने अपने डाक्टरेट के शोध-प्रबंध में बंगला गीत काव्य के संबंध में लिखते हुए भानुसिंह की कविता को बड़े आदर का स्थान दिया और आश्चर्य की बात है कि उस प्रबंध पर उनको डाक्टर की उपाधि भी मिल गई।

सन् 1805 से लेकर 1828 तक का उनकी गीतांजलि और उसके कारण उनकी बढ़ती हुई ख्याति का समय है। गीतांजलि की कविताओं का अनुवाद उन्होंने विलायत जाते समय जहाज पर किया। विलायत में उन्होंने यह अनुवाद अपने मित्रों को सुनाया तो उनकी आध्यात्मिकता और संगीतमयता को देखकर चकित रह गए। सन् में जब वे शांतिनिकेतन में ही थे उनके नोबुल पुरस्कार पाने की सूचना मिली। उस सूचना का सारे भारत ने सहर्ष स्वागत किया। नोबुल पुरस्कार का मिलना भारत के ही नहीं सारी एशिया के लिए गौरव की बात थी। फिर क्या था रविबाबू की ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। यूरप और अमेरिका में बड़ी-बड़ी व्याख्यान मालाओं के देने केलिए आमंत्रित हुए। नोबुल पुरस्कार से जो द्रव्य मिला तथा उनके व्याख्यानों की सब आय उनकी प्रिय संस्था शांतिनिकेतन की उपयोगिता बढाने में खर्च हुई। उन्होंने विदेशों की खूब यात्रा की और सभी जगह उचित सम्मान पाया। वे चीन और जापान भी गए थे। इस प्रकार उन्होंने अपने पर्यटन द्वारा एक विश्वबंधुत्व स्थापित कर दिया था। उनकी स्थापित की हुई विश्वभारती विश्व बंधुत्व के भाव को चरितार्थ कर रही है। शांतिनिकेतन को कला का केंद्र बनाकर भारतीय संस्कृति की विश्वपीठ

से उन्होंने समस्त विश्व को पोषित किया है। मृत्यु की भयावहता को पराजित करने वाले इस युगद्रष्टा विश्वकवि ने 8 आगस्त 1941 में स्वर्गारोहण किया।

रवि बाबू एक साथ नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार, पत्रकार, आलोचक, कवि सब कुछ थे। साहित्य की समस्त विधाओं को अपनी अलौकिक प्रतिभा से संपन्न बनाया। जहाँ तक उनके काव्यों का संबंध है, 'भानुसिंह कविता', 'संध्या संगीत', 'गंगा लहर', 'गीतांजलि' आदि सुप्रसिद्ध हैं।

रवींद्र ने दो हजार से ऊपर गीत लिखे और उनके स्वर ताल की रूप रेखा भी तैय्यार की। इन गीतों में और उनके ताल में एक हृदय, एक वेदना बसी हुई है। और अनेक स्थलों पर लगता है कि कवि नवयुग का आह्वान कर रहा है।

उनका व्यक्तित्व असाधारण था। अपने पिता महर्षि देवेंद्रनाथ के अनुरूप स्वयं महर्षि, का जीवन बिताया। 'कविनां कवि' की उत्तमोत्तम उपाधि से विभूषित हुआ। वे बड़े परिश्रम से अपनी प्रतिभा को युगधर्म के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया और इस में उन्हें बहुत सफलता मिली।

अपनी रचनाओं की विविधता और श्रेष्टता के कारण रवींद्रनाथ को सहज ही भारत ही नहीं विश्व का और सभी समयों का एक श्रेष्ट कलाकार माने जाते हैं। इतनी बड़ी प्रतिभा का सही सही मूल्यांकन करना कोई आसान बात नहीं है। ऐसी प्रतिभाएँ विरले ही होती हैं। अपनी विशिष्ट दृष्टि से वे जनमानस की उन आशा, आकांक्षाओं, विचारों, आदर्शों और भावनाओं को अभिव्यक्त देते हैं। जो न जाने किस अवचेतन या अर्धचेतन कोने में दबी पड़ी रहती हैं। जो ऐसा करने में रवींद्र की प्रतिभा अद्वितीय सिद्ध हुई है। वहाँ वह उस जनजीवन में भी खूब गहरी पैठे जिस में कि वह, फूली फली।

पूर्व और पश्चिम का समन्वय :—

रवींद्र अपने समय के बड़े भाग्यशाली थे। जब पाश्चात्यों के आगमन से भारत के जीवन में एक आलोडन सा पैदा हुआ — और उनके संपर्क से समूचे देश में जागृति की एक नयी लहर सी फैल रही थी तो अनेक भारतवासियों की आँखों में इस नई रोशनी ने चकाचौंध सी पैदा कर दी और वे पश्चिम की नकल करने लगे। उस समय रवींद्र पूर्व और पश्चिम की अच्छाइयों का एक सुंदर समन्वय कर भारतीय जीवन को समृद्ध कर सके।

बहिर्मुखी प्रतिभा की अभिव्यक्ति :—

रवींद्र को अपने प्रारंभिक जीवन में ग्रामीण जीवन और संस्कृति के निकट आने का मौका मिला। महीनों तक वे पूर्वी बंगाल के गावों, पद्मा नदी के किनारे और नौकाओं में रहे। यहाँ के जीवन में उन्हें इतिहास के ~~प्रार्वनाः~~आ प्राचीन और मध्य-कालीन संस्कृतियों की झलक मिली। बाद में शहरों में पनपी। संस्कृति के मुकाबले में यह जन संस्कृति ~~के~~ काफी पुरानी, गहरी और व्यापक थी। कदाचित् इसलिए रवींद्र नाथ की प्रतिभा की बहुमुखी अभिव्यक्ति केवल साहित्य की सीमाओं तक ही आबद्ध न ~~रह्~~ नहीं रही। बल्कि एक संगीतज्ञ, अभिनेता और एक चित्रकार के रूप में भी प्रकट हुई। इसके अतिरिक्त उन में धार्मिक, शैक्षिणिक विचारों तथा राजनीतिक और सामा-जिक सुधारों के रूप में भी आत्म प्रकाश किया। इनसब को देखते हुए रवींद्रनाथ को सहज ही आधुनिक भारत के निर्माताओं में गिना जा सकता है।

जीवन की एकता :—

रवींद्र की सब से बड़ी शक्ति है उनके जीवन की एकता की भावना। उन्होंने जीवन और कला में मानव धर्म और कभी कोई भेद नहीं किया। उन्होंने सुंदर की खोज अवश्य की। किंतु केवल जीवन के सत्य और शिव के रूप में ही।

प्रकृति और मानव का संबंध :—

रवींद्र संसार के बहुत बड़े गीतकार थे। भावना की रमणीयता और तल्लीनता तथा कल्पना की विविधता और संकेतमयता के कारण ही वे हमें ऐसे गीत और गान दे सके हैं जिनके सुनने के बाद शब्द चाहे भूल जाय किंतु उनके भाव न जाने कब तक हमारे मानस में झंकृत होते रहते हैं। भावना, कल्पना और संगीत के इस सुंदर समन्वय के दर्शन उनके जीवन के प्रारंभिक काल से ही होने लगे थे। उनका जीवन दर्शन प्रकृति और मानव का जीवन दर्शन है। उनको इस भुवन से बड़ा मोह है। उन्होंने इस भुवन को सुंदर कहा है और कहा है ! ''मैं इस सुंदर भुवन में मरना नहीं चाहता।'' उनका सुंदर भुवन केवल आँखों का ही विषय नहीं बल्कि मन का विषय है। मन प्रकृति तथा मानव के बाह्य और प्रधानतः अंतः सौंदर्य का दर्शन करता है। इस प्रकार उन्होंने अपने काव्य में मानव और प्रकृति का अविच्छेद्य, घनिष्ट संबंध स्थापित किया है।

धरती का प्यार। :—

रवींद्र को धरती से बड़ा प्यार था। उन्होंने अपना प्यार प्रकृति के प्रति अपने हृदय के अजस्र श्रद्धा, अखंड प्रेम और अटूट विश्वास को अपने असंख्य गीतों और कविताओं में उड़ेला है। प्रेम के घनिष्टतम और सूक्ष्मतम भावों और भेदों में दुःख और सुख ने उनके अविस्मरणीय शब्दों में रूप पाया है। अनुताप, परिताप और हार्दिक भावों के साथ उनकी रचनाओं में व्यक्त हुई है। उसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है। उनकी अनेक रचनाओं में मानवीय भावनाओं के साथ प्रकृति की सच्चरिता भी परिलक्षित होती है। वे जानते थे कि यह दुनिया बुराइयों से मुक्त नहीं है तथा जीवन बड़ा संघर्षमय है। पर इसके बावजूद उनका विश्वास था कि सारी कमियों और बुराइयों कष्ट कठिनाइयों और अभाव आकांक्षाओं के होने से ही तो हम इस धरती

को और इसपर के अपने जीवन को इतना प्यार करते हैं।

विश्वमानव की पूजा :—

यद्यपि रवींद्र मूलतः गीतकार ही थे पर प्रकृति से उनके गहरे प्रेम और जीवन से उनके अपूर्व प्रेम ने उनकी कविताओं में भी एक विचित्र नाटकीयता ला दी है। इसके साथ ही मानव के प्रति उनका अगाध प्रेम और सत्य तथा न्याय के प्रति उनकी अटूट आस्था ने उनका ध्यान सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की ओर भी आकृष्ट किया। अवसर या अनुभव कितना ही छोटा क्यों न हो पर अपनी कल्पना और भावना के जादू से छूकर उन्होंने उसे विश्व मानवता के ऊँचे स्तर पर उठा दिया है। समग्र मानवता की पूजा में उनकी आस्था थी। 'जनगणमन अधिनायक' गीत में रवींद्र जन गण के मन के उस अधिनायक की जय बोले हैं जिसके रूप में विश्व मानवता को भारत का भाग्य विधाता माना गया है।

रवींद्र के इस सहज स्वाभाविक मानव प्रेम ने ही आगे चलकर जगन्नियंता के प्रेम के का रूप धारण कर लिया है। उनके लिए प्रेम ही ईश्वर था। माँ का अपने बेटे के अशेष प्रेम के दो भिन्न रूप ही कहे जा सकते हैं। इस उदात्त प्रेम ने न केवल उनकी कल्पना की रहस्यमय उठानों में ही बल्कि मानव के दैनंदिन जीवन के माध्यम से भी अभिव्यक्ति पाई है। रवींद्र ने बार बार कहा है कि ईश्वर का साक्षात्कार जीवन के उन सहज व्यापारों के माध्यम से भी अभिव्यक्ति पाई है। रवींद्र ने बार बार कहा है कि ईश्वर का साक्षात्कार जीवन के उन सहज व्यापारों, उन दैनंदिन कार्यों के माध्यम से ही हो सकता है जिनमें कि यह विश्व टिका हुआ है।

शांति और सत्य की आराधना :—

कुछ लोगों ने रवींद्र की इस विराट प्रेम साधना को रहस्यवाद नाम से भी पुकारा है। जब गीतांजलि का संग्रह अँग्रेजी में छपा तो युद्ध से अस्तव्यस्त यूरप ने

को और इसपर के अपने जीवन को इतना प्यार करते हैं।

विश्वमानव की पूजा :—

यद्यपि रवींद्र मूलतः गीतकार ही थे पर प्रकृति से उनके गहरे प्रेम और जीवन से उनके अपूर्व प्रेम ने उनकी कविताओं में भी एक विचित्र नाटकीयता ला दी हैं। इसके साथ ही मानव के प्रति उनका अगाध प्रेम और सत्य तथा न्याय के प्रति उनकी अटूट आस्था ने उनका ध्यान सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की ओर भी आकृष्ट किया। अवसर या अनुभव कितना ही छोटा क्यों न हो पर अपनी कल्पना और भावना के जादू से छूकर उन्होंने उसे विश्व मानवता के ऊँचे स्थर पर उठा दिया है। समग्र मानवता की पूजा में उनकी आस्था थी। 'जनगणमन अधिनायक' गीत में रवींद्र जन गण के मन के उस अधिनायक की जय बोले हैं जिसके रूप में विश्व मानवता को भारत का भाग्य विधाता माना गया है।

रवींद्र के इस सहज स्वाभाविक मानव प्रेम ने ही आगे चलकर जगन्नियंता के प्रेम के का रूप धारण कर लिया है। उनके लिए प्रेम ही ईश्वर था। माँ का अपने बेटे के अशेष प्रेम के दो भिन्न रूप ही कहे जा सकते हैं। इस उदात्त प्रेम ने न केवल उनकी कल्पना को रहस्यमय उठानों में ही बल्कि मानव के दैनंदिन जीवन के माध्यम से भी अभिव्यक्ति पाई है। रवींद्र ने बार बार कहा है कि ईश्वर का साक्षात्कार जीवन के उन सहज व्यापारों के माध्यम से भी अभिव्यक्ति पाई है। रवींद्र ने बार बार कहा है कि ईश्वर का साक्षात्कार जीवन के उन सहज व्यापारों, उन दैनंदिन कार्यों के माध्यम से ही हो सकता है जिनमें कि यह विश्व टिका हुआ है।

शांति और सत्य की आराधना :—

कुछ लोगों ने रवींद्र की इस विराट प्रेम साधना को रहस्यवाद नाम से भी पुकारा है। जब गीतांजलि का संग्रह अँग्रेजी में छपा तो युद्ध से अस्तव्यस्त यूरप ने

और संगीत का अनुपम योग किया है। उनकी सरलता में गौरव और गाम्भीर्य है।

उनकी कविता केवल कविता नहीं, वरन् उस में एक आध्यात्मिकता भरी हुई है। उनकी कविता को उनके दार्शनिक और धार्मिक भावों से अलग करना कठिन होगा। उन्होंने यद्यपि लौकिक कविता की है तथापि उस लौकिक में एक दैवी आभा दिखाई पड़ती है। वास्तव में कवि के लिए स्वर्ग और संसार में कोई भेद नहीं। वे सुख-दुखमय संसार को ही प्रधानता देते हैं।

रविबाबू की कविता में कला है और मर्यादा है। उन्होंने अपनी कविता में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् का आदर्श चरितार्थ किया है। प्रकृति प्रेम और आध्यात्म में समन्वय किया है। कवि और एक संगीतज्ञ, अंतरदर्शी और कलाकार रवींद्र का एक विशेष व्यक्तित्व था जो अपना स्वाभाविक आकर्षण रखता है। वे सच्चे कवि थे। 'कवीनां कविः' थे। उनका जीवन काव्यमय था। विश्व के सभी विचारक केसरलिंग के शब्दों में यह मानते हैं कि वे सब से अधिक सार्वभौमिक, सर्वपरमार्थी और पूर्ण मानव थे। उन्होंने जीवन के उदात्त रूप को सौंदर्य और कला में देखा था। शांति-निकेतन का रागरंगमय, सरस, दार्शनिक जीवन आज भी समस्त संसार का आकर्षण केंद्र बना हुआ है। राहुल सांकृत्यायन ने कहा था — ''भारत के लिए रवींद्र एक भारी महत्व रखते हैं। भारत के साहित्य के इतिहास के एक नये युग के प्रवर्तक हैं। सिर्फ बंगला भाषा के साहित्य में ही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य में चाहे आप हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया जैसी उत्तर की भारतीय भाषाओं को लें या दक्षिण की तेलुगु, कन्नड, जैसी द्रविड भाषाओं को।

<u>रवींद्र की देन</u> :—

ऊपर रवींद्र के व्यक्तित्व की जिस संपन्नता और एकता का जिक्र किया गया है वह अंततः उन सब रूपों का समन्वय मात्र है जो कि आज भारत की समन्वयात्मक

संस्कृति के आधार बने हुए हैं। इस बात का श्रेय और गौरव रवींद्रनाथ को ही था कि उन्होंने भारतीय जीवन की इस विविधता को एकता के सूत्र में पिरोया, जहाँ उन्होंने शब्द और छंद संस्कृत साहित्य से लिए, वहाँ उन्होंने वैष्णव गीतों और सूफी मत का सुंदर सम्मिश्रण भी किया। उन्होंने सामंत युग के अवदानों की चर्चा भी अपनी कल्पना और हार्दिक सहानुभूति के साथ बड़े सुंदर ढंग से की। इसी के साथ उन्होंने जन साधारण के उन अनुभावों तथा भावनाओं का भी उपयोग किया जो अब तक प्रायः अछूती सी थीं। उनकी कई कविताओं में कल्पना और प्रतिभा के जादू से बंगाल के ग्रामों के अनेकों प्रतीकों और प्रतिमाओं ने जो रूप पाया है वह अद्वितीय है। साथ ही उन्होंने बंगला साहित्य में यूरप के विचारों, आदर्शों तथा भावनाओं का भी सुंदर सामंजस्य उपस्थित किया।

<u>रवींद्र की गीतांजलि — एक अध्ययन</u> :—

सुविस्तृत जीवन के असीम ज्वार में
वे ही केवल संतोष पा सकते हैं
जो बुराई से भलाई में पृथक कर सकते हैं,
या अज्ञानता में पड़े रह सकते हैं —
इन दोनों के बीच में समग्र व्यग्र पीड़ा है।
तेरे दिव्य पूर्वज्ञान, तेरी दिव्य शक्ति के सामने,
मेरी यह मंद बुद्धि क्या है?
विद्यालयों में प्राप्त यह सारा ज्ञान क्या है?
ऋषि, पुरोहित और पांडित्याभिमानी क्या है? मूर्ख।
विश्व तेरा है, तुझ से पैदा हुआ है,
तुझ में यह घटता है, तुझ से यह बढ़ता है।

इसलिए, सांसारिक पांडित्य, जिसके द्वारा बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की जाती है?
वह शाश्वत को जानता है, सब कुछ जानता है और पैसा नहीं।

''एक महापुरुष संसार की भर्त्सना करके मुझे बाध्य कर देता है कि वह संसार की उसकी व्याख्या करे।'' रवींद्रनाथ ठाकुर भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी संसार को बाध्य किया कि वह पत्र-पत्रिकाओं के अनेक लेखों तथा प्रबंधों द्वारा उनके विचारों का विश्लेषण और विवेचन किया। उनकी कृतियों की जितनी विश्वव्यापी महत्ता तथा लोकप्रियता उनके विचारों की उच्च आदर्शवादिता के कारण है, उतनी ही उनकी शैली की गरिमा और उनके साहित्य की भव्यता के कारण भी। ऐसे समय जब कि सभ्य संसार निकट युद्ध के महासंकट से गुजर रहा है, रवींद्रनाथ की शिक्षा की आज विशेष उपयोगिता है — उस शिक्षा की जिसकी आध्यात्मिक तत्वों के संसार-सागर से पार उतारने की शक्ति में पूर्ण आस्था है। रवींद्र के जीवन दर्शन के बारे में दो मत हैं। एक मत में वह वेदांती है — ऐसे विचारक हैं, जिन्हें उपनिषदों से अंतःप्रेरणा प्राप्त होती है। यदि दूसरे मत से देखें तो वह एकेश्वरवाद के समर्थक हैं, जो ईसाई मत से अभिन्न नहीं तो न्यूनाधिक रूप में उसके समान अवश्य है। रवींद्रनाथ का झुकाव पहले पक्ष की ओर है। 'उपनिषदों के श्लोक और बुद्ध की शिक्षाएँ, सदा ही मेरे लिए भावना का विषय रही है और इसीलिए वे प्राणमूलक व असीम बुद्धि से संपन्न रही है। मैंने अपने जीवन और प्रवचन दोनों में उनका उपयोग उस रूप में किया है, जिस रूप में जैसे दूसरों केलिए, वैसे मेरेलिए वे व्यक्तिगत अर्थ से ओतप्रोत रहे हैं और जिस रूप में वे अपने समर्थन केलिए मेरे उस विशेष साक्ष्य की प्रतीक्षा में हैं, जिस साक्ष्य का अपनी वैयक्तिकता के कारण अवश्य ही महत्व होना चाहिए।''

इस मत के अनुसार रवींद्र का दर्शन भारत की प्राचीन प्रज्ञा का ही है, जिसे

आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्त किया गया है। उनकी कृतियाँ आधुनिक युग के एक ऐसे विचारक की उपनिषदों की टीका ही हैं, जिस पर आधुनिक कला की गहरी छाप है। उन में प्राचीन भारत की आत्मा प्रतिबिंबित होती है। उनका आदर्शवाद भारत के अपने ही अतीत की सच्ची संतति है और उनका दर्शन उद्गम और विकास दोनों ही दृष्टियों से भारतीय है। डा० कुमारस्वामी के शब्दों में — ''रवींद्रनाथ ठाकुर की विचारधारा अनिवार्य रूप से भावना और रूप में तत्वतः भारतीय है।'' *
दूसरे मत के अनुसार रवींद्रनाथ ठाकुर ने, हिंदूधर्म के अन्य पुनरुद्धारकों के समान ईसाई मत और पाश्चात्य विचारधारा से निःसंदेह बहुत कुछ लिया है, और इन विदेशी तंतुओं को अपने विचार के बाने में बुना है। यदि पश्चिम के प्रति वह अपना आभार स्वीकार नहीं करते तो 'स्पेक्टेटर' के समालोचक के शब्दों में यह 'स्थानीय देशभक्ति' 'कृतघ्नता' और 'पाखण्ड' का उदाहरण है।'' हम देखते हैं कि ठाकुर ने यूरोप से उधार लिये हुए नीतिशास्त्र की शिक्षा में अपनी असाधारण साहित्यक प्रतिभा का इस प्रकार प्रयोग किया है, मानो वह नीतिशास्त्र भारत की अपनी ही विशिष्ट चीज है।'' बहुत ऊँची दिखाई देनेवाली उनकी सूक्तियों में पाखण्ड का घातक दोष है।''
इस आलोचकों की धारणा है कि रवींद्रनाथ की विचारधारा में अंतर्निहित नैतिकता और दर्शन वास्तव में ईसाई मत से लिए गये हैं। ऐसे आलोचक वेदांत दर्शन को उस सिद्धांत से अभिन्न समझते हैं जिसके अनुसार परमात्मा निर्गुण निराकार है, संसार माया है, ध्यान पलायन का साधन है और आत्मा का निर्वाण मानव का अंत है। स्पष्ट ही ये विचार रवींद्रनाथ के नहीं है। उन्होंने हमें 'मानवीय' ईश्वर व्यक्त किया है। संसार के मिथ्यात्व के विचार को घृणापूर्ण शब्दों में अस्वीकार किया है। कर्म की अत्यधिक प्रशंसा की है, और धर्मपरायण आत्मा के लिए जीवन की पूर्णता का विश्वास दिलाया है। ये सब ईसाई धर्म की विशेषताएँ है और 'रवींद्रनाथ ठाकुर

है भी क्या?''

श्री के॰ जे॰ सौण्डर्स ने कहा है — ''गीतांजलि का ईश्वर हिन्दू-दर्शन की अवैयक्तिक, निर्विकार, परम सत्ता नहीं है, किंतु चाहे वह स्पष्ट रूप से ईसाई मत-सम्मत ईश्वर हो, अथवा नहीं, वह तत्व ईसाई मत के ईश्वर के समान अवश्य है और उस ईश्वर के भक्त तथा प्रेमी का अनुभव सारे ईसाई लोगों के आस्थावान् हृदयों के आंतरिक अनुभव से अभिन्न है।''

श्री एड्वर्ड जे॰ तामसन का यह कहना कि — ''गीतांजलि में व्यक्त विचार हिन्दू विचारपरंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'बेहद' बात है। वह लिखते हैं — ''वह व्यक्ति जिसकी गणना आज से संसार के महान धार्मिक कवियों में होनी चाहिए, वह अपने आपको ईसाई नहीं कहता, किंतु उस में हमें इस बात की स्पष्ट झाँकी मिलती है कि भारत में ईसाई धर्म का क्या रूप होगा और तुम देखते हैं कि ईसाई धर्म को भारत में प्राप्त हुआ रूप ईसाई धर्म के मूल रूप से श्रेष्ठतर है।''

श्री रवींद्रनाथ प्रकृति की गोद और उन्मुक्त वातावरण के जीवन को आध्यात्मिक उन्नति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं क्यों कि प्रकृति में धर्मनिष्ट दृष्टि असीम को अनंत शयनम की शांत और कुछ मुस्कुराती हुई मुद्रा में पड़ा देखती है। रवींद्रनाथ के गीतों का विषय मठ अथवा एकांत प्रदेश नहीं, कुलेराज मार्ग है। स्वच्छ वायु में वह उल्लसित हो उठते हैं। किंतु सुनहरे राजछत्र के नीचे खड़े होने से भी वह नहीं हिच-किचाते। उनके मतानुसार ईश्वरीय प्रेरणा ग्रहण करने का सर्वोत्तम उपाय प्रकृति के ध्यान में लीन होकर अपने आप को उसमें खो देना है। एकांत में और नीरवता में हमें प्रकृति में ईश्वरीय सान्निध्य का सुख लेना चाहिए।

बोलपुर के अपने स्कूल में रवींद्र ने धार्मिक शिक्षा पर जोर नहीं दिया, किंतु उनका विश्वास है कि धार्मिक भावना और पवित्रता स्वयं ही विद्यार्थियों के जीवन में

प्रवेश पा लेंगे, यदि उनका वातावरण शुद्ध और सात्विक हो।

आजकल हमें पूजा-अर्चना केलिए न मंदिरों की आवश्यकता है और न बाह्य विधि-विधानों तथा धार्मिक अनुष्ठानों की। हमें जिसकी वास्तविक आवश्यकता है, वह है आश्रम। हमें ऐसा स्थान चाहिए जहाँ प्रकृति की सुषमा और मानव के श्रेष्ठतम प्रयासों में मधुर समन्वय किया गया हो। हमारी पूजा का मंदिर वही है, जहाँ बाह्य प्रकृति और मानवीय आत्मा का तादात्म्य होता है। ''मानव-प्रकृति पर वातावरण के प्रभाव को स्वीकार करते हुए प्राचीन आचार्य अपने आश्रमों केलिए वनों की गहन छाया और नदियों के तट चुना करते थे। जब हम अपने चारों ओर फैली हुई दिव्यता से भर जाते हैं, तो हम भगवान का गंभीर ध्यान और चिंतन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं — ''आप मेरे आँगन में अपने सुखद उच्छ्वासों तथा मर्मर् ध्वनि के साथ वसंत आया है और मधुमक्खियाँ अपने पुष्पित कुंज-रूप दरबार में अपनी मादकता का काम कर रही हैं।

अब जी चाहता है — तेरे सम्मुख चुपचाप बैठूँ और मौन तथा निर्बाध अवकाश में जीवन के समर्पण का गीत गाता रहूँ।'' — गीतांजलि— 5

फिर मध्याह्न के काम में मैं कर्मशील मनुष्य समुदाय में रहता हूँ, किंतु आज इस मेघाच्छन्न निर्जन दिन में मैं तेरे ही सान्निध्य की आशा करता हूँ। यदि तुम मुझे दर्शन नहीं दोगे, यदि तुम मुझे पूर्णतया एकाकी छोड़ दोगे, तो मुझे नहीं मालूम कि मेरे बरसात के ये लंबे-लंबे घंटे किस प्रकार बीतेंगे। — गीतांजलि —17

हर्ष तथा उल्लास के ऐसे क्षणों में जब हम मौन रूप से ईश्वर के उन जीवित जाग्रत सामीप्य की आराधना करते हैं, जिसका हमें प्राकृतिक ऐश्वर्य तथा सौंदर्य के माध्यम से अनुभव होता है और जिसकी आवाज विश्व में व्याप्त ऐश्वर्य के ध्यान के द्वारा

आत्मा को सुनाई पड़ती है, तब हम पर अकथनीय शांति छा जाती है। उस समय असीम अपने रहस्य हमारे कान में गुनगुनाता है और हमें आत्मा की कहानी तथा सृष्टि की गाथा सुनाता है।

अकथनीय से घनिष्ट संपर्क स्थापित करने के लिए हमें क्रिया की कोलाहलपूर्ण दुनिया से भाग जाना चाहिए। निर्जीव यांत्रिक कार्य व्यक्ति का पतन कर देता है और पशुवत् बनाता है, जब कि प्रकृति का जीवन आत्मा को पवित्र करता है और ऊपर उठाता है। प्राकृतिक दृश्य की स्वाभाविकता के प्रति उत्साहपूर्ण आत्म-समर्पण मानव को किस प्रकार उसके ध्येय तक पहुँचाता है, इसका वर्णन रवींद्रनाथ ने बहुत ही सुंदर ढंग से किया। " मैं भी —— जल के किनारे लेट गया और मैंने अपने श्रांत अंगों को घास पर फैला दिया। मेरे साथी तिरस्कारपूर्ण मेरा उपहास करने लगे। गर्व से सिर ऊँचा करके वे तेजी से आगे बढ़ने गये। उन्होंने विश्राम तो क्या पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। वे दूर के नीले धुँधला में ओझल हो गये। उन्होंने बहुत से मैदानों और पर्वतों को पार किया। तथा वे अजनबी और दूर-दूर के देशों में से गुजरे। अनंत मार्ग के ओ वीर आतिथ्य का तेरा —— हार्दिक सम्मान है। उपहास और उपालंभ ने मुझे कुरेद-कुरेद कर उठाना चाहा, किंतु मुझ में कोई प्रतिक्रिया न हुई। आखिरकार मैंने आनंदप्रद मान-वर्धन की गहराई में धुंधले आनंद की छाया में खोये जाने के लिए अपने को छोड़ दिया।

आखिर, जब नींद से जागा और आँखें खोलीं, मैंने तुम्हें अपने पार्श्व में खड़े पाया। तुम अपनी मुस्कानों से मेरी निद्रा की शून्यता को आप्लावित कर रहे थे। "

(गीतांजलि — 47)

" "वही जीवन-सरिता जो दिन-रात नस-नाड़ियों में प्रवाहित हो जाती है, विश्व में द्रुत गति से दौड़ रही है और लय-ताल के साथ नृत्य कर रही है। " गीतांजलि-68

वही आत्मा अत्यधिक दूर स्थित सूर्य में आत्मा की गहनतम गहराइयों में निवास करती है। प्रकृति ऐसी द्वेषपूर्ण प्रतिकूल शक्ति नहीं जो पग-पग पर मानव को हैरान करे, संसार हमारे लिए अनजानी पराई चीज नहीं।

जब प्रातःकाल मैंने प्रकाश की किरणों देखीं तो तत्क्षण मैंने अनुभव किया कि मैंने इस विश्व में निरा अजनबी नहीं हूँ।'' गीतांजलि — 84

ईश्वर अपना बलिदान करता रहता है, जिस से कि प्रकृति और मानव-जाति जीवित रह सके। जिस में विश्व निहित है, उस पूर्ण सत्ता का आत्मविच्छेद केवल उसके आनंद की ही अभिव्यक्ति और विश्व का नियम है। यह ''वह आनंद है, जो आनंद जीवन तथा मरण इन दो जुड़वाँ भाइयों को विस्तृत संसार में अपनी लीला करने केलिए नियुक्त कर देता है। जो आनंद खिलखिलाहट के द्वारा समस्त जीवन को हिलाता और जगाता हुए अंधड़ के साथ बेरोकटोक आगे बढ़ता चला जाता है, जो आनंद पीड़ा के विकसित लाल कमल पर अपने आँसुओं के साथ शांत रूप से स्थिर रहता है, जो आनंद अपनी संपत्ती को मिट्टी में मिला देता है और जो आनंद स्वयं शब्दज्ञान से परे है।'' गीतांजलि —47

संसार की मूर्त सृति की अनुभूति केलिए आनंद के विस्फोट की आवश्यकता है। इस आनंद के परिणाम स्वरूप ही सृष्टि का निरंतर नव-निर्माण होता रहता है —

तू इस क्षण भंगुर पात्र को पुनः पुनः रिक्त करता है और इसे सदा सर्वदा ही अभिनव जीवन से भरता रहता है। — गीतांजलि —1

पूर्ण ब्रह्म अपने आपको वियोग और मिलन के द्वारा प्राप्त करता है। अ-शाश्वत को साकार रूप प्रदान करने केलिए यह वियोग आवश्यक है :—

''तेरे और मेरे महान् आडंबरपूर्ण समारोहों से यह आकाश समच्छादित है। तेरी और मेरी सुर-तानों से समस्त वायुमंडल स्पंदित है तथा तेरी और मेरी आँख

मिचोनी के मैं—है युग-युग बीतते जाते हैं। — गीतांजलि — 71

"यह वियोग की वेदना है, जो संसार भर में व्याप्त हो जाती है और अनंत आकाश में अनेक आकृतियों को जन्म देती है। — गीतांजलि 64

वह वहाँ है जहाँ किसान कठोर भूमि को जोतकर खेती कर रहा है, जहाँ मजदूर पत्थर फोड़कर रास्ता तैयार कर रहा है। — गीतांजलि 11

उपनिषदों के ऋषियों से लेकर सभी मतों और धर्मों के रहस्यवादी ईश्वर की सर्वांतर्व्यापिता के विश्वास के बारे में एकमत हैं। "पत्थर को उठा, और वहाँ तू मुझे देखेगा, लकड़ी को चीरा और मैं उसके अंदर विद्यमान हूँ।" इस प्रकार तर्क करना ठीक नहीं कि वेदांत का पूर्ण ब्रह्म निष्फल आकाश-कुसुम है और रवींद्रनाथ का ईश्वर सगुण सत्ता है और इसलिए रवींद्रनाथ वेदांती नहीं है।

वेदांत कहता है — ईश्वर सर्वस्व है — किंतु वह यह भी कहता है — ईश्वर कुछ भी नहीं। वह यह नहीं, क रहस्यवाद की यह उलझन, जो ईश्वर को कभी (सबकुछ) और कभी कुछ भी नहीं बना देती है। वेदांतों की ही विशेषता नहीं, अपितु समस्त रहस्यवादी साहित्य की विशेषता है। रवींद्रनाथ की कविताएँ इस विशेषता से भरपूर हैं। उनके कुछ पृष्ठों में पूर्ण ब्रह्म अमूर्त, निराकार और निर्मम है किंतु ऐसा ईश्वर नहीं जो आराधना और उपासना के योग्य हो। यह 'अतर्क्य सत्ता है जो नाम और रूप से रहित है' — गीतांजलि — 84

किंतु वहाँ जहाँ आत्मा के मुक्त विहार के लिए अनंत आकाश फैला हुआ है। निष्कलंक श्वेत दीप्ति का विस्तार है। न दिन, न रात्रि, न रूप है, न रंग और शब्द तो है ही नहीं।" गीतांजलि — 67

दूसरी ओर इसी कविता में रवींद्रनाथ ने सारे विश्व को ईश्वर की अभिव्यक्ति

बतलाया है — ''तू आकाश भी है और तू घोसला भी है।'' — गीतांजलि 67

गीतांजलि की कविताओं से यदि हम यह अनुमान करें कि परमात्मा मनुष्य के ऊपर उनके विरुद्ध एक व्यक्ति है, तो हम गलती करेंगे। रवींद्रनाथ के लिए परमात्मा वह सत्ता नहीं, जो बहुत ऊँचे स्वर्ग में स्थित है, वरन् वह एक आत्मा है जो मानवों और समस्त जीवन संसार में अंतर्व्याप्त है। रवींद्रनाथ का प्रेम लिंगातीत आध्यात्मिक प्रेम है, जो अधिकतर संसार के लिए दुस्त्र है — वह एक ऐसा प्रेम है जो अंधकार में घुलमिलकर लुप्त हो जाने के लिए ब्रह्मरूपी समुद्र में अपने को खो देता है या जो श्वेत प्रातःकाल की मुस्कुराहट में, या पारदर्शक पवित्रता की शीतलता में, विद्यमान हो सकता है। — 'गीतांजलि—70

अहं की समाप्ति होने पर प्रेम की सृष्टि होती है। आत्म केंद्रित जीवन ईश-केंद्रित हो जाता है। यह कहा जाता है कि यदि मनुष्य परमात्मा को नहीं देखेगा तो जीवन नहीं रहेगा। निश्चय ही जीवित नहीं। किंतु जब तक मनुष्य मनुष्य है, वह उसे नहीं देख सकता। जब वह उसे देख लेता है, वह मानव नहीं रहता। उस विशालता और अव्यक्त के सम्मुख मानव का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। उस समय सर्वव्यापी प्रेम व्यक्ति की चेतना पर आक्रमण करता है और उस पर छा जाता है। उस समय उसका संपूर्ण व्यक्तित्व — देह, मन और आत्मा-परमात्मा के प्रति समर्पित हो जाता है। ''नीले आकाश से एक आँख मुझे नटखट की लगाकर देखेगी और मुझे मौन निमंत्रण देगी। मेरे लिए कोई चारा नहीं होगा, कोई चारा नहीं होगा और मैं तेरे चरणों में पूर्ण विवाह प्राप्त करूँगा।''

परम आनंद की यह अवस्था मृत्यु नहीं। वरन् पूर्णता है। यह चेतना की पूर्णता है। जिस में न तो दृष्टि को धुंधला करनेवाली धूल है और न अंधकार। यह पूर्ण स्वच्छता और पारदर्शिता की अवस्था है जिस में से परमात्मा की किरणें बिना किसी

विघ्न-बाधा के आ जा सकती है।

व्यक्ति अपने अंदर अनंत की अनुभूति का प्रयत्न करता है, उसकी पूजा करता है। प्रेम से उसका आलिंगन करता है और अंत में उसके साथ एक हो जाता है। इस उद्देश्य के प्राप्त होने तक मनुष्य सांसारिकता में फंसा रहता है। जब उसकी प्राप्ति हो जाती है, तब मनुष्य को परमात्मा से पृथक रखनेवाला उसका मिथ्या व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। जब कोई मुझे जान लेता है तब उसके किसी विरोधी की सत्ता नहीं रहती, तब कोई दरवाजा बंद नहीं रहता।" तब आत्मा मृत्यु या उस से भी अधिक भयानक लगनेवाली किसी भी चीज का मुकाबला करने के लिए तैयार रहती है। क्यों कि तब वह उस अनंत जीवन की सहभागी बनती है जिसे मृत्यु पराजित नहीं कर सकती।" मेरा संपूर्ण शरीर और मेरे अंग उसके स्पर्श से पुलकित हो गये हैं, जो स्पर्शातीत है, और यदि इस अवस्था में मृत्यु आती हो, तो आये।" गीतांजलि—86)

अनंतता की श्वेता चमक उसे भर देती है और उसके हृदय में तीव्र उत्साह और उसकी आत्मा में संगीत की स्थापना कर देती है। वह अनंत यौवन और शक्ति से संपन्न हो जाता है और संसार को प्रकाश से भर देता है।

अनंत जीवन के इस मत के साथ ही साथ हमें पुनर्जन्मवाद के सिद्धांत के भी दर्शन होते हैं —

"जब माता बच्चे का अपने दायें स्तन से अलग करती है, वह रोने लगता है, जब कि अगले ही क्षण बायें स्तन से उसे सांत्वना मिल जाती है।" गीत—85

भारतीय दार्शनिकों की तरह, रवींद्र भी उद्देश्य की सिद्धि पर्यंत, व्यक्तियों की क्रमिक पूर्णता में विश्वास रखते हैं। उद्देश्य की प्राप्ति से पूर्व, आत्मा को बहुत से जीवनों में से गुजरना पड़ता है। "तू ने मुझे अंतहीन बनाया है, ऐसी मैं तेरी

तेरी प्रसन्नता है। इस सुंदर पात्र को तू बारंबार रिक्त करता है और इसे सदा नवजीवन से भी पूर्ण करता है। मेरी यात्रा में जो समय लगता है, वह दीर्घ है, और उसका मार्ग भी दीर्घ है। मैं प्रकाश की प्रथम किरण के रथ पर अपनी यात्रा की लीक बनाई और अनेक संसार की मरुभूमियों में से अपनी यात्रा जारी रखी। और पूर्णता की ओर प्रगति में मनुष्य को अपनी माया के क्षीण हो जाने के कारण फिर से नया शरीर धारण करना पड़ता है। और यह पुनर्नवीकरण ही मृत्यु है। 'यह तू ही है, जो दिन की थकी हुई आँखों पर रात्रि का परदा डाल देता है कि जिससे जागरण के नवीन आह्लाद में अपने नवीन दृष्टि आ जाय।'' गीत–25

मृत्यु केवल अधिक उन्नत और अधिक पूर्ण जीवन के लिए ही तैयारी है। पृथ्वी में स्वर्ग को खूब ठूँस-ठूँस कर भरा गया है, सारी सत्ता परमात्मा से आच्छादित है। ग्रीस के एक विचारक के अनुसार, सोने की जंजीर के द्वारा पृथ्वी स्वर्ग के साथ बँधी हुई है। संसार की छोटी छोटी वस्तु में भी अज्ञान के लिए भविष्यवाणी की शक्ति विद्यमान है। सब कहीं विश्व एक ऐसा द्वार है, जिस में से हम आध्यात्मिक विरासत तक पहुँच सकते हैं। कहीं भी इस पर चोट करो,कहीं इस पर कब्जा करो, यह प्रभु की हवेली का मार्ग खोल देती है।'' वह प्रभु आता है, आता है, सदा आता है, प्रतिक्षण और प्रतियुग प्रतिदिन और प्रतिरात्रि वह आता है, सदा आता है।'गीत–45

परमात्मा की सेवा में कभी भी अत्यधिक विलंब नहीं होता। दिन की समाप्ति पर मैं इस आशंका से शीघ्रता करता हूँ कि कहीं द्वार बंद न हो जाय, किंतु मुझे मालूम पड़ता है कि अब भी समय शेष है। — गीतांजलि–72

रवींद्रनाथ ठाकुर ने दरिद्र बस्तियों के जीवन, कठोर परिश्रम, वेश्यावृत्ति और राजनैतिक शोषण की आधुनिक समस्याओं का विशेष हवाला देते हुए उपनिषदों, बाइबिल, भगवद्गीता, तथा कांट के सुपरिचित प्रसंगों पर टिप्पणी की है।

विश्व के प्रति अपनेपन या एकता के अनुभव की वजह से ब्रह्मज्ञानी पृथ्वी के सुधार और मानवता को सुखी बनाने के लिए कार्य करने लगता है। क्यों कि ऐसे ब्रह्मज्ञानी की आँखों के सामने पूर्ण बने हुए मनुष्य का हृदय हमेशा बना रहता है, इसलिए उसका प्रेम भूखे और प्यासे, बीमार और दुबले, अपरिचित और नंगे प्रत्येक प्राणी के लिए प्रकट होता है। वह अनुभव करने लगता है कि परमात्मा उन सभी में तो निवास करता है, दरिद्रों की बस्ती में उत्पन्न शिशु भी तो परमात्मा की ही रचना है। 'यहाँ तो तेरा पाद पीठ है, और वहाँ तेरे पैर टिके हैं। जहाँ अधिक से अधिक दीन, हीन तथा क्षीण मनुष्य वास करते हैं।' — गीतांजलि-10

निरपेक्ष ब्रह्म में व्यवस्था और प्रेम एक ही होते हैं। एक दूसरे के विरोधी नहीं। यही बात मुक्त आत्मा के संबंध में भी सत्य है। उनके द्वारा की गई पूर्ण सेवा उसका पूर्ण स्वातंत्र्य ही है। जिसका आनंद ब्रह्म में केंद्रित है, वह निष्क्रिय रहकर अकेले जीवित रह सकता है।'' हमारे प्रभु ने भी स्वयं अपने आप को सृष्टि के बंधनों में आनंदपूर्वक बाँधा है। वह सदा के लिए हम से बंधा हुआ है।''

— गीतांजलि- 11

गीतांजलि में प्रेमी के प्रश्नोत्तर में विद्या को इस प्रकार प्रकट किया है, ''तेरे प्रेम की क्या निशानी शेष है? तेरा प्रेम का प्रतीक क्या है? यह न तो फूल है, न सुवासित करनेवाले द्रव्य, न सुगंधित जल से पूर्ण पुष्पपात्र वरन् यह है ज्वाला की तरह चमकती और वज्रपात की तरह भीषण तेरी मजबूत तलवार।'' इस प्रकार का ज्ञान पर प्रेमी संकल्प करता है — ''आज से मैं सारे तुच्छ अलंकारों को छोड़ता हूँ। मेरे हृदय के स्वामी, अब मैं निभृत में बैठकर प्रतीक्षा नहीं किया करूँगा और रोया नहीं करूँगा, और न मुझ में प्रेम के बर्ताव में लज्जा की लाली होगी, न मिठास साज-शृंगार के लिए तूने मुझे अपनी तलवार दी है। मुझे गुड़िया के अलंकरणों की भी अब

आवश्यकता नहीं रही।'' गीतांजलि—52

ब्रह्म को दृढ़ता से पकड़कर ही मुक्त आत्मा संसार में अपने विरोधी अवनिष्ट का मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ती है। परंतु यह क्रियाशीलता किसी निजी स्वार्थ के लिए नहीं होगी। इस बात में इसको बच्चों के कार्यों से समझना है। बच्चे काम करने में आनंद अनुभव करते हैं, क्यों कि काम करना उनके लिए काम करना नहीं, वरन् अतिरिक्त शक्तियों की अभिव्यक्ति है, उनको अतिरिक्त शक्तियों को खेल द्वारा भी बहिर्मुखी होने का मौका मिलता है। संसार की कठिनाइयाँ उन्हें प्रभावित नहीं करतीं।

''तूफान पथशून्य आकाश में भटकता है। पथविहीन जल में जहाज नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु का नर्तन होता है, पर बच्चे खेलते हैं।—गीतांजलि—60

ब्रह्माधिष्ठित आत्माओं वाले मनुष्य बच्चों की तरह भोले-भाले होते हैं और जीवन के आनंद संसारों के सागर-तट पर बच्चों का यह महान सम्मिलन है।' गीता-63

संसार में दुःख के- का क्या स्थान है? रवींद्रनाथ का कहना है कि जब कभी किसी व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति नहीं होती तो उस समय उसे पीड़ा होती है। परंतु वह कभी इस बात- बात को जानने की परवाह हीं करता कि उसकी इच्छाएँ उसकी यथार्थ आवश्यकताओं को प्रकट करती हैं या उसकी स्वार्थमय स्वभाव-जन्य आवश्यकताओं को। वास्तव में परमात्मा उसकी अपरी आत्मा की बहुत-सी इच्छाओं को पूरा न करके और मुझे मेरी निर्बल तथा अनिश्चित इच्छाओं के संकटों से बचाकर तुम दिन-प्रतिदिन मुझे पूर्ण रूप से अपने ग्रहण के योग्य बना रहे हो। — गीतांजलि 14

''दुः- दुर्भाग्य ने तेरे दरवाजे को खटखटाया है, और उसने तुझे यह संदेश दिया कि तेरा स्वामी सजग है और वह रात्रि के अंधकार में वे तुझे प्रेम-मिलन के लिए पुकार रहा है।'' — गीतांजलि 27

हे पवित्र परमात्मा! हे सजग प्रभो! आप अपने प्रकाश और गर्जन के साथ ~~बच्चों का एक मकान बनिस्बत है। —गीतांजलि 63~~ उस समय आये जब इच्छा, भ्रांति और कोमलता से मन को अंधा बना देती है।'' — गीतांजलि 36

''यदि आपकी यही इच्छा है तो आप मृत्यु की कालिमा से आवृत भयंकर तूफान को भेजिये और विद्युत के कशाघात से आकाश को इस छोर से उस छोर तक चौंका दीजिए।'' गीतांजलि 40

मेरे प्रभो! यह मेरी ही अपनी तुच्छ आत्मा है। उसे कोई लज्जा नहीं, किंतु उसके साथ तेरे दरवाजे पर आते हुए मुझे लज्जा अनुभव होती है। —गीत॰ 30

हमारी स्वार्थपरायणता में हम यह सोचते हैं कि शांत पदार्थ हमारे अंदर ~~की~~ की अनंत की अभिलाषा को संतुष्ट कर सकते हैं। जब हम मिथ्या उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तो हम अपनी इच्छाओं से बंध जाते हैं। — गीत॰ 31

दार्शनिक यह तर्क करता है कि सारी असंतुष्टि अपरिज्ञात संगति है। कवि हमें ~~के~~ बुरी चीजों में भलाई की आत्मा ~~आनन्द~~ के दर्शन कराता है। संसार की शाश्वत समस्वरता हमें कवि के गीतों में सुनाई पड़ता है।'' मेरे कवि अपनी रचना को मेरी आँखों से देखना और अपनी ही ~~क~~ शाश्वत समस्वरता को ~~ध्यानपू~~ ध्यानपूर्वक सुनने ~~का~~ के लिए चुपचाप मेरे कानों के प्रवेश-द्वारों पर खड़े होना, क्या यह तेरा आनंद है।'' — गीतांजलि 65

हिंदूदर्शन और धर्म के अत्यधिक सूक्ष्म विचारों ने उनके गीतों में अपनी शास्त्रीय क्लिष्टता को छोड़ दिया ~~के~~ है और वे मनुष्य के सामान्य जीवन के अंग बन गये हैं। रवींद्रनाथ ~~जीवन के अंत~~ ने भारत के उन महर्षियों की परम्परा का अनुसरण किया है जिन्होंने उपनिषदों तथा अपनी कृतियों के प्रगीतों में यही गाया, जो कुछ उन्होंने अनुभव किया। भारत के भक्तिमय तथा काव्यपूर्ण साहित्य ने कविता और संगीत के रूप में

शरीर धारण किया है। भक्ति के महाकाव्यों — रामायण एवं महाभारत के द्वारा पुरोहित तथा किसान और राजकुमार तथा कम्कार, सभी उन भारतीय दर्शन तथा धर्म के तात्विक बातों से परिचित हो गये हैं, जिन्हें भारत के ऋषियों ने विचार के द्वारा प्राप्त किया था। कला भारत के राष्ट्रीय जीवन में इतनी गहराई से प्रविष्ट हो गई है कि ये भारतीय किसान जो अक्षर ज्ञान शून्य होने के अर्थ में अशिक्षित हैं, संस्कृति की दृष्टि से संसार के किसी भी अशिक्षित हैं, संस्कृति की दृष्टि से संसार के किसी भी प्रदेश के किसानों से अपनी तुलना की चुनौती दे सकते हैं। गीतांजलि की भूमिका में श्री येट्स ने टिप्पणी की है — "जिस परंपरा में काव्य और धर्म एक ही चीजें हैं, वह शिक्षितों और अशिक्षितों से रूपक और संयमों को एकत्र करती हुई शताब्दियों से चलती रही और फिर से विद्वानों और कुलीनों के विचारों से जनता तक पहुँचती रही है।" — गीतांजलि पृष्ठ 14

गीतांजलि ज्ञान का एक भंडार है। इस में सब कुछ है। साहित्य की सभी विधाएँ लघु कथा, उपन्यास, नाटक सब प्रतिभासित हैं। परमात्मा और जीवात्मा के बीच जो प्रणय व्यापार चला है, उसे देखने से औपन्यासिक शिल्प परिलक्षित होता है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच संवादों का जो सरस योजना चली है, उस से इसका एकांकत्व स्पष्ट हो जाता है। गुरुदेव ने लघुकथाओं के लिए जो रूप रेखा दी है वह गीतांजलि के 50 वें गीत की कथा को देखने से स्पष्ट होजाता है।

त्याग की परीक्षा के लिए यह लघु कथा पर्याप्त है। भक्त भगवतगीता का सार जो त्याग है उसका इस कथा में प्रतिपादित है। लघुकथाओं के लिए सस्पेन्स (कौतूहल) जो चाहिए वह गीतांजलि में सर्वत्र है।

भावी पीढ़ियों केलिए गीतांजलि भारतीय ज्ञान विज्ञान का महान संदेश देनेवाली सिद्ध होगी। गीतांजलि सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक, चिरंतन, शाश्वत,

आध्यात्मिक एवं उत्तम काव्य के लक्षणों से संपन्न है। गीतांजलि में पूर्व तथा पाश्चात्य आदर्शों का सुंदर समन्वय हुआ है। दोनों सभ्यताओं की महानता एवं उदात्तता से परिचित व्यक्ति ही इसे समझ सकेंगे और इस से आनंदित होंगे। भारत में जिन दिनों राजनैतिक स्वाधीनता के लिए राजनैतिक नेता अपने प्राणों का अर्पण करते थे उन दिनों आत्मा की स्वतंत्रता की कामना करने का श्रेय एकमात्र गुरुदेव को मिला है। इस विषय में उनके भावों की उदात्तता इस गीत को पढ़ने से विदित होगी —

''जहाँ हृदय भयशून्य है, जहाँ मस्तक ऊँचा है, जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ घर की दीवार के भीतर अपने आँगन में दिन रात्रि का उद्गम हृदय स्थित सत्य के गहरे स्रोत से होता है, जहाँ कर्मधारा देश देशांतर की प्रत्येक दिशा में सहस्र धार बनकर चरितार्थ होती है, जहाँ मरुभूमि की बालू के समान तुच्छ आचार विचारों के स्रोत मार्ग पर फैलकर उसे ग्रस न लेते, जहाँ पौरुष के नित्य प्रति सैकड़ों खंड नहीं किये जाते, जहाँ केवल तुम्हीं संपूर्ण कर्म, चिंता एवं आनंद के नेता हो।

हे पिता! अपने हाथों से निर्दय ताड़ना देकर भारत वर्ष में उसी स्वर्ग को जागृत करो। — गीत—35

इस प्रकार गीतांजलि परंपरागत भारतीय दर्शन का नवीन संस्करण है। भारतीय संस्कृति में जो कुछ है वह सब इस में है। डा० राधाकृष्णन ने गुरुदेव का जीवन दर्शन का वर्णन करते हुए कहा था कि — ''गुरुदेव ने जीवन का मूल्यांकन अत्युत्तम रीति से किया है। वे वसुधैव कुटुंबकम के जीते जागते उदाहरण हैं। उन्हें मानवीय और दिव्य प्रकृति का प्रत्यभिज्ञान है। जीवन के प्रति पूर्णतया आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखकर भी प्रत्येक व्यक्ति केलिए विश्व के रंगमंच पर अपना अपना अभिनय करना आवश्यक मानते हैं।

गीतिकाव्य की दृष्टि से ख्यातिसेवा :—

बंध की दृष्टि से काव्य के दो भेद हैं — 1) प्रबंध और 2) मुक्तक। मुक्तक काव्य मुक्तक होने से मुक्तक कहलाता है और उसका प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है। मुक्तक के दो भेद हैं। पाठ्य और गेय। पाठ्य मुक्तक प्रायः सूक्तियों के रूप में आते हैं। लेकिन गीतकाव्य को गेयमुक्तक कहेंगे। अंग्रेजी में इसे लिरिक कहते हैं। लिरिक शब्द का संबंध वीणा की भाँति के (Lyre) नामक वाद्य से है। इसलिए कुछ गीतों ने लिरिक का अनुवाद वैणिक किया है। वैणिक शब्द पुराना है किंतु इसका प्रगीत काव्य से कोई संबंध न था। प्रायः गेय पदों में भावातिरेक और निजीपन अधिक रहता था। इसीलिए निजी भावातिरेक का प्राधान्य इन कविता का मूलतत्व हो गया है। अंग्रेजी के आलोचना संबंधी ग्रंथों में 'लिरिक' की इस प्रकार परिभाषा दी गयी है ——

"Lyric Poetry, as the name implies (lytic Song Poetry) is Poetry originally intended to be accompanied by the lyre or by some other instrument of music. The term hascome to signify any out burst in song which is composed under a strong impulse of action or inspiration"

—— Judgement in Literature - 17 P.

गेयमुक्तक प्रगीत काव्य कहलाते हैं। प्रगीत में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता रहती है। अतः गीति काव्य की सर्जना तभी होती है जब भावों के आवेश से प्रेरित होकर निजी उद्गारों को काव्योचित भाषा में प्रकट किया जाता है। ये भाव स्वयं कवि के अथवा उसके जीवन से संबंधित भी हो सकते हैं और कवि निर्मित किसी पात्र के भी। कहने का तात्पर्य यह है कि सजीव भाषा में व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक अनुभूतियों और भावों के साक्षात्कार करने की क्षमता प्रगीत काव्य की विशेषता है।

किंतु व्यक्तिगत भाव और अनुभूति की तीव्रता प्रगीत काव्य में रागात्मकता की भरी देता है। गीतिकाव्य में रागात्मकता, निजीपन और अनुभूति की प्रधानता रहती है।

प्रगीत काव्य का कवि गीति काव्य में जो कुछ कहता है वह उसकी निजी अनुभूति होती है। उस में उसके अपने दृष्टिकोण की प्रधानता रहती है। व्यक्तित्व में इसी प्रधानता के साथ गीतिकाव्य में संगीत दूसरा प्रधान तत्व है। किंतु यह संगीत बाह्य कम और आंतरिक अधिक होता है। प्रगीत काव्य की भाषा सरल, सरस, सुकुमार और मधुर होनी चाहिए। अपरिचित और मनगढ़ंत शब्दों का प्रयोग तथा अनुप्रास और दार्शनिक शब्दों की भरमार गीतिकाव्य में वर्जित है। शैली की दृष्टि से भी गीतिकाव्य में सरलता तथा सुकुमारता का होना आवश्यक है। भावों की स्पष्टता भाषा और विषय का तथा विषय और भाव का सामंजस्य गीतिकाव्य की प्रभावोत्पादिकता और पूर्णता के लिए आवश्यक हैं। संक्षिप्तता का सर्वाधिक प्रयोग गीतिकाव्य में ही होता है। क्यों कि भाव तथा गीत में तीव्रता उत्पन्न करने केलिए विस्तार की कमी अनिवार्य है। संक्षेप में गीतिकाव्य के तत्व इस प्रकार हैं —

संगीतात्मकता तथा उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकांत पदावली, निजी रागात्मकता और भाव की एकता।

उपर्युक्त तत्वों को दृष्टि में रखकर सुश्री महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है — ''सुख-दुख की भावावेश मयी अवस्था विशेषकर गिनेचुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।''

प्रवृत्ति <u>प्रगीत काव्य का वर्गीकरण :—</u>

वस्तुतः आकार और वृत्ति के अनुसार किया गया वर्गीकरण ही निस्संगत और

वैज्ञानिक हो सकता है। सरलता और सुविधा की दृष्टि से वर्गीकरण गीतिकाव्य का इस प्रकार कर सकते हैं — 1) प्रेम गीत 2) व्यंग्य गीत 3) धार्मिक गीत 4) शोक गीत 5) युद्ध गीत 6) सामाजिक गीत 7) संबोधन गीत आदि। इन में प्रेम गीत ही अधिक मात्रा में मिलते हैं। प्रेम गीत में प्रेम के दोनों पक्ष संयोग और वियोग सम्मिलित हैं। प्रेम गीत ही संभवतः गीति काव्य का सर्वाधिक प्राचीन रूप है। क्यों कि विरह पक्ष ही तो कविता का जन्मदाता है। विश्व का अधिकांश प्राचीन साहित्य प्रेम गीतों में ही उपलब्ध है। इन भेदों के अतिरिक्त आजकल राष्ट्रीय गीतों की भी रचना हो रही है। प्राचीन काल में वीर गीत ही रचे जाते हैं। किंतु आज धीरे-धीरे राष्ट्रीय गीत वीर गीतों का स्थान ले रहा है। राष्ट्रीय गीतों में जातीय ओज, गर्व तथा शालीनता की अभिव्यक्ति होती है। उन में देश के प्रति गौरव, प्रेम तथा सम्मान की भावना को उत्पन्न किया जाता है। पराधीनता के कारण तेलुगु के राष्ट्रीयगीतों में देश की वर्तमान दुख दैन्यपूर्ण अवस्था के वर्णन के साथ अतीत के गौरव की गाथा बराबर दिखाई जाती है। राष्ट्रीय तथा जातीय जागरण की भावनों से पूर्ण गीत भी इसी श्रेणी के अंतर्गत ग्रहीत किये जाते हैं। गुरजाड अप्पाराव, रायप्रोलु सुब्बाराव, वेंकट पार्वतीश कवि आदि ने राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण अनेक सुंदर गीत लिखे हैं।

साहित्यक गीतों में प्रकृति चित्रण :—

प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। आज की कवि भावातिरेक में सब बंधनों से मुक्त होकर प्रकृति में एकाकार होने का प्रयत्न करता है। हिमाच्छादित शैल शृंगों में, निरंतर झरते झरनों में, पुष्पों से लदे लताओं में, आकाश में घिरते श्याम मेघों में ,शरद् की चंद्रिका और वसंत की मादकता में कवि

किसी रहस्यमय अज्ञात शक्ति को अनुभव करके उद्वेलित हो उठता है। प्रकृति में उस विराट के दर्शन की लालसा बहुत प्राचीन है। आज भी बहुत से कवि प्रकृति द्वारा परमात्मा की अनुभूति को प्राप्त करते हैं। गीति काव्य का संबंध भावना अथवा अनुभूति से होता है। वह प्राकृतिक सौंदर्य के उपकरणों को महत्व अवश्य देता है किंतु अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति ही उसका मुख्य उद्देश्य होता है। वह अपनी अनुभूति तथा भाव को प्रकृति के सौंदर्य में एकाकार करके उसमें तीव्रता ला देता है। गीतकार कवि प्रकृति को अपनी अनुभूति से अधिक महत्व नहीं दे सकता। इस प्रकार के प्रकृति चित्रण में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता रह सकती है। किंतु कवि अपनी भावना-भावनाओं का विस्तार उस में प्राप्त कर सकता है। सावन में घिरते घुमडते मेघों को देखकर उसे प्रियतम की याद आ जाती है। वह उसे लक्ष्य करके तड़प उठता है तो वसंत की मधुर मादक यामिनी मिलन के क्षणों में नवचेतना, नवजीवन, नवीन उत्साह और नवीन पुलक को उत्पन्न करनेवाली होती है।

इस युग में कवियों ने प्रकृति चित्रण संबंधी गीतों में प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रकृति के रम्य उपकरणों में मानवीय भावनाओं का आरोप करके उन में किसी रहस्यमयी अज्ञात शक्ति के अन्वेषण का प्रयत्न स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। प्रकृति का प्रत्येक सौंदर्यशाली उपकरण किसी गहरी अनुभूति और प्रेरणा का वाहक हो जाता है। झरते हुए झरने केवल झरने मात्र न रहकर जीवन की गतिशीलता के परिचायक हो जाते हैं। मेघ में चमकती हुई विद्युत, जीवन की क्षणभंगुरता और नश्वरता को याद दिला देती है। आज के कवि प्रकृति संबंधी जीवन मीमांसा संबंधी आध्यात्मिक विरह मिलन के गीत अनेक गा रहे हैं। गांधीवाद से प्रभावित राष्ट्रीय गीत, लौकिक प्रेम गीत भी लिखे जा रहे हैं। आज के के गीतकारों पर गीतांजलि का प्रभाव स्पष्ट

रूप में दिखाई देता है। रविबाबू ने भगवान के आभूषणों की अपेक्षा उनके हृदय को और भी अधिक मनोहर कहा है ——

सुंदर बटेन तव अन्द दखानि
ताराय ताराय खचित
स्वर्णे स्वर्णे रत्ने शोभित रचित जानि
वर्णे वर्णे रचित
खड्ग तोमार आरो मनोहर लागे
बांका विद्युते आंका से।। — गीतांजलि—56

— वैसे तो यह प्रकृति का युग है पर आधुनिक साहित्य में रविबाबू ने 'बंधन' में मुक्तिवाली भावना को अग्रसर किया था। यह बात श्रीमद् भागवत के निष्काम कर्म द्वारा ही संपादित हो सकती है। रविबाबू की गीत देखिये ——

से आमार नय
असंख्य बंधन माझे महानंदमय
लभिब मुक्तिर स्वाद।।

— आधुनिक रहस्यवादी कवियों ने विरह मिलन के गीत लिखे हैं। उन में मिलन की अपेक्षा विरह के गीत अधिक हैं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जिन में वह अपने भौतिक बंधनों से ऊँचा उठ पाता है। उन्हीं क्षणों की अनुभूति कल्पना से विस्तृत और तीव्रतर बना देती है। यह संभव है कि इन विरह गीतों के तल में लौकिक विरह ही हो किंतु वह अलुप्त हो गया है। प्राकृतिक दृश्यों की ओट में प्रियतम के साथ आँख मिचौनी के खेल में परमात्मकता की व्यापकता का विश्वास तथा युग के लोगों का उससे साक्षात्कार न होने की आत्म स्वीकृति है।

आज के राष्ट्रीय गीतों में एक ऐसी कोमलता और शालीनता है, उस में देश के प्रति गौरव की भावना जागृत की गयी है और जगत की अपूर्णताओं, क्रूरताओं एवं कर्कशताओं, मंगलमय भगवान की मंगल विधायिनी शक्तियों के सहारे स्निग्ध और सुडौल बनाने की कामना प्रकट की गयी है। वर्तमान तेलुगु काव्य धारा में वेंकट पार्वतीश कवि युगल ऐसे हैं जिन्होंने एकांतसेवा में गीतिकाव्य के सभी तत्वों को समाविष्ट किया है। उनके गीत ऐसे सुललित, मंजुल और मनोहर हैं जिन में गीति काव्य की सभी विशेषताएँ एक ही स्थान पर दिखाई देती हैं। यद्यपि उन में गीतांजलि जैसी गहराई नहीं है, अर्थ गौरव नहीं है, भाव गांभीर्य नहीं है, फिर भी उन में गीति काव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। भाव, भाषा, शैली, सभी ने सर्वत्र है और कोमलता है। शब्दमैत्री, वर्ण मैत्री, और पदमैत्री की त्रिवेणी सुंदर छटा प्रत्येक चरण में दृष्टिगोचर होती है। इस कारण एकांतसेवा को आधुनिक तेलुगु के गीति काव्य में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। वह रवींद्रनाथ की गीतांजलि के समकक्ष मानी जाती है।

रवींद्र और वेंकट पार्वतीश कवि : गीतांजलि और एकांतसेवा का परिपार्श्व में

बंगभाषा के रवींद्र तथा तेलुगु के वेंकटपार्वतीश कवि में अधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि दोनों की परिस्थितियों में बहुत अंतर था तथापि वेंकट पार्वतीश कवि अपनी अनेक कविताओं में रवींद्र की पगडंडी पर बहुत तक चलते दिखाई पड़ते हैं। वेंकट पार्वतीश कवि की एकांतसेवा बहुत कुछ रवींद्र की गीतांजलि के अनुकरण पर रची गयी है। दोनों समकालीन थे।

दोनों भाषाओं के कवियों की परिस्थितियों में प्रादेशिक शिक्षा-कुल आदि से संबंधित अनेक भेद होते हुए भी दोनों में भौतिक समता की ओर बढ़ रहे थे एक व्यापक सत्ता का चारों ओर दर्शन। दोनों को इस संसार में एक बंधन दृष्टिगोचर

हो रहा था, जिस से मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग को और निश्चित करना दोनों का लक्ष्य था। दोनों के सामने एक राजनैतिक बंधन था। इसलिए देश की समस्या भी उनकी आँखों में झूलती रही। अतएव उनकी अपनी मनोवृत्तियों के साथ अपने प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं :—

जहाँ विवेक की निर्मल जल धारा पुरातन
रूढ़ियों में सूखकर लुप्त नहीं हो गई,
जहाँ मन तुम्हारे नेतृत्व में सदा उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होनेवाले
विचारों और कर्मों में रत रहता है,
प्रभु! उस दिव्य स्वच्छता के प्रकाश में मेरा देश जागृत हो। —(गीतांजलि)

वैंकट पार्वतीश कवि किसी जाति, किसी वर्ण और शास्त्र नहीं चाहते, किसी धर्म का भला नहीं चाहते और न किसी व्यक्ति विशेष का भला चाहते हैं। वे चाहते हैं, मानव का कल्याण और वे चाहते हैं मानव धर्म की प्रतिष्ठा।

मातृमंदिर के एक गीत में मातृभूमि की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—
भाइयों! सब लोगों के लिए एक ही माता और पिता है। हम सब भाई भाई हैं। दारा, पुत्र, धन के मोह में पड़कर विश्वबंधुत्व की भावना को भूलकर आपस में लड़ना, झगड़ना ठीक नहीं। वृक्ष अपना फल नहीं खाता, गाय अपना दूध नहीं पीती, फूल अपना मकरंद नहीं लेता, सब परोपकारी हैं, पर कोई स्वार्थी है इस जगत में तो वह एकमात्र मानव है। जन्मभूमि सब से बड़ी माता है, वह स्वर्ग से बढ़कर है। किसी को अस्पृश्य समझना, गरीबों के पेट काटना, धन का अधिक संग्रह करना, दूसरों पर भेदभाव, जातिगत, प्रांतगत और वर्णगत, वर्गगत भेदभाव — ये सब ठीक नहीं, सब के प्रति मातृभावना रखनी चाहिये, सब से पहले जन्मभूमि की सेवा

करनी चाहिए। (मातृमंदिर—पृष्ठ 227)

दोनों की अभिव्यंजना में कवित्व की शक्ति है। दोनों को अपने गीतों पर विश्वास है जिनका धरातल सार्वजनीन है। जब रवींद्र यह कहते हैं कि तेरी पूजा संसार को कँगाल नहीं बनाती। तब वे स्पष्टतः अनन्य प्रेम की ओर संकेत करते हैं। वैंकटपार्वतीश कवि भी 'काव्य कुसुमावली' के 'प्रेम' शीर्षक गीत में अनन्य प्रेम की व्याख्या करते हैं।

दोनों को प्रिय विरह सता रहा है। प्रियतम से न मिलने के कारण उनको गहन व्यथा की अनुभूति हो रही है। उनको यह विरह पृथ्वी भर में व्याप्त दीख रहा है। विवशोक्ति के सिवा और कोई उपाय दिखाई नहीं देता और वे केवल यह कहकर रह जाते हैं —

तुम से भेंट नहीं हुई, केवल व्यथा ही मेरे मात्र में आई।

— प्रियव्यथा — गीतांजलि

वैंकटपार्वतीश कवि कहते हैं कि "जब तक प्रियतम को जीवात्मा नहीं देखेगी तब तक उसे शांति नहीं मिलेगी" — (एकांतसेवा — रब)

प्रियतम की प्रतीक्षा में दोनों कवि बेचैन हैं। रविबाबू कहते हैं —

"प्रभु! तेरी प्रतीक्षा में जागते आँखें थक गई — तुम से भेंट नहीं हुई, तब भी मैं तेरी राह देख रहा हूँ। — (गीतांजलि)

वैंकट पार्वतीश कवि कहते हैं —

"सत्य स्वरूप! मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी स्थिति में, चाहे, अनजाने में; यदि मुझ से अपराध बन गया हो तो उसे भूल जा। कृपा करके मुझे दर्शन दो। तुम से बिछुड़कर मैं एक क्षण को भी नहीं रह सकती। (एकांतसेवा—12)

— इस प्रतीक्षण में व्यग्रता है, आतुरता है, कष्ट है, सब कुछ है, फिर भी मधुर

है, मधुराति मधुर है। इसी से वैंकटपार्वतीश कवि कहते हैं —— मधुर मोहन मूर्ति के मंदहास में पुष्प कुंजों का हास है। सौरभपूर्ण प्रसन्नता का हास है, गंगा देवी का मृदुमधुर हास है। पूर्णिमा की रात का मधुर मंदहास है, तारागों की तरल हंसी है, सौदामिनी की सरल हंसी है, उस मधुर हास विलास में समस्त प्रकृति आनंदित है। मधुर चंद्रिमा में मधुरामृत, मधुरामृत में मधुर रस, उस में मधुर भाव, मधुर भाव में मधुर रूप, उस मधुर रूप में मधुर तेज, मधुर तेज में मधुर मोहन मूर्ति विराजमान है। —— (एकांतसेवा – 48)

कवींद्र रवींद्र भी इस विरह जन्य प्रतीक्षा, अतृप्ति, आकांक्षा और व्यथा को प्रियतम लाते हैं। वे कहते हैं ——

यह राह दे स्वामी मुझे प्रिय लगता है।

यह अतृप्त वासना भी मुझे प्रिय लगती है।

आकांक्षा भी मुझे प्रिय लगती है।

यह व्यथा भी मुझे प्रिय लगती है।''

—— वैंकट पार्वतीश को भी यही स्थिति पसंद है। ——

'' हृदयेश। तुझे क्या अभीष्ट है मुझे यह मालूम नहीं। यह भी नहीं जानती कि तुझे किस समय क्या पसंद होता है। इसलिए प्रणय मंदिर के एकांत कोने में शांति, श्रृंगार पूजा मंडप के पास अमृत, दूध, शहद और मधुर फलों का संग्रह कर रखा। बहुत समय तक प्रतीक्षा की।'' — एकांतसेवा — 13

''यही रविबाबू का उत्कट विरह है जो मानवी भावनाओं, प्रेम, वासना, सुख और दुख के विविध रूपों में, घर-घर छाया हुआ है।''

उनके गीतों के स्वर भी इसी विरह ताप से द्रुत है। जो विरह-ताप कवि के हृदय में भरा है वही पिघल पिघलकर गीतों में बह रहा है। — गीतांजलि

उसी विरहन्ताप से प्रिय का रूप व्यक्त होता है — ''यह विरह दुख ही है जो रातभर निःशब्द तारों का दीपक लेकर तेरा रूप व्यक्त कर रहा है।(गीतांजलि)

वैंकटपार्वतीश कवि प्रिय के रूप को देखने केलिए प्रकृति के विभिन्न तत्वों से खोज लेने की प्रार्थना भ्रमर से करता है —— ''हे भ्रमर। तू शीघ्र जाकर प्रकृति के कोने कोने में सर्वत्र ढूँढकर प्रियतम को खोज ला। स्वच्छ चाँदनी में, सभी दिशाओं में, तारों के समूह में या समस्त गगन मंडल में जहाँ कहीं भी हो, अन्वेषण कर मेरे स्वामी का पता लगा आना। (एकांतसेवा —17)

विरह का प्रकाश अद्भुत प्रकाश है। इस से बुझे हुये दीपक में ज्योति भर जाती है। इसीलिए रविबाबू उस प्रकाश का गीत गाते हुए कहते हैं —

प्रकाश। अरे। प्रकाश कहाँ है?

विरह की ज्योत्स्ना से दीपक को प्रदीप्त करती

बुझे हुए दीपक को रख दे, विरह की नई ज्योति से उसे लगा ले।

अपनी दीपक को विरह की अग्नि से ही प्रदीप्त कर ले। — गीतांजलि-27

वैंकट पार्वतीश को विरह का प्रणय सर्वत्र परिलक्षित होता है ——

''हे प्रणयादि नाथ। आनंद के नंदनवन में

जहाँ प्रणय के प्रकाश के झरने झरझर करते हैं,

प्रणय की लताएँ बढ़ती हैं,

प्रणय के नवपल्लव उत्पन्न होते हैं,

प्रणय की कलिकाएँ उत्पन्न होते हैं,

प्रणय के पुष्प विकसित होते हैं,

प्रणय की सुगंधि फैलती है,

प्रणय के फल फलते हैं, जहाँ प्रणय ही

प्रणय रहता है, वहाँ हम दोनों प्रणय सकुल दंपती बनकर प्रणय लीलामृत तरंगों में प्रणय के झूलों पर प्रेम से झूलते, प्रेम गीत गाते, प्रणय शासन को मानते हुए प्रणय साम्राज्य का पालन करेंगे।'' — एकांतसेवा—16

यही एक साधना है जो सब साधनों का साधन है। इस में सब साधनों का मिलन हो जाता है।

दोनों मनीषियों का लक्ष्य अद्‌वैत सिद्धि संयोग है। वे प्रिय का दर्शन चाहते हैं किसी दूसरे जन्म में नहीं, इसी जन्म में। वेंकटपार्वतीश कवि मन को संबोधित कर कहते हैं — ''जब जब मेरे प्रेम मंदिर में प्रभु पधारेगा, आनंद साम्राज्य में अधिष्टित होगा, और दिग्विजय की दुंदुभी बजेगी, सब मन। बिखर न जा। एकाग्र होकर मिल जा। (एकांतसेवा —43

रविबाबू को भी प्रियदर्शन की चाह इसी जीवन में है। वे उसे देखने के लिए व्यग्र हैं। उन्हें यह आशंका है कि कहीं ऐसा न हो कि इस जीवन में प्रिय का दर्शन न मिल पाये। अतएव उनकी आतुरता इन शब्दों में व्यक्त होती है — प्रभो। यदि अब इस जीवन में तुझे न देख पाया। यह बात मन में काँटे की तरह चुभती रहेगी कि — 'तुझे नहीं देख पाया।'' — गीतांजलि

दोनों कवि को प्रिय का आभाव मिल गया है। वेंकट पार्वतीश उस प्रिय को किसी मंदिर में नहीं बल्कि दृश्यमान चराचर जगत् में ही देखने का प्रयत्न करते हैं। प्रकृति के कण-कण में उनको उस प्रिय का आभास होता है।

''अनुराग जलधि की अमृत तरंगों में सुविकसित पुष्प नौके पर प्रिय विहार करता होगा —(एकांतसेवा —31) प्रशांत वन में, स्वर्ण सौध में, या सुविकसित फूलों की शय्या पर प्रभु सोया होगा। (एकांतसेवा —32) पद्मालय में प्रियतम सोया होगा। — (एकांतसेवा— 20)

रविबाबू का देवालय का इस अर्थ के लिए है। रविबाबू कहते हैं —— ओ पुजारी! तू द्वार बंद करके देवालय के कोने में क्यों बैठा है? अपने अंधकार छिपा कर बैठा तू कौन सी पूजा में मग्न है? आँखें खोलकर जरा देख तो सही, तेरा देवता देवालय में नहीं। (गीतांजलि)

वे भजन, पूजन, साधन को किनारे रख दें। वे पुजारी को उस देवता का निवास उस स्थान में बतलाते हैं — जहाँ किसान कठोर जमीन को साफ करके खेती कर रहा है और जहाँ मजदूर पत्थर तोड़कर रास्ता तैयार कर रहे हैं।''

— गीतांजलि

क्यों कि वहाँ कर्म की सहज व्याख्या है, आडंबर और ढोंग नहीं है। सहज सेवा के मूल में उस देवता का निवास है। दोनों का प्रिय असीम है किंतु सीमा में भी उसी का स्वर ध्वनित हो रहा है। जिसको बैंकट पार्वतीश ढूंढना चाहते थे वह उनको अनन्तत्र सर्वत्र मिल जाता है।

प्रणय नगर के प्रासाद वीथि में वेणुगीत की ध्वनि सुनाई दे रही है। कल्याण नगर के कमलालय में वीणा की झंकार सुनाई दे रही है, उदय राग के उत्तम शिखर-शिखर पर शिखबगीत सुनाई दे रहा है, परमपुरुष के प्रांगण में वेदों का मंजुल घोष सुनाई दे रहा है, ईश्वर की अर्चना का समय हो रहा है, सर्वेश्वर को देखने की वेला निकट आई है, नेत्रद्वय। आदिदेव को अपनाने का समय आसन्न हुआ है। (एकांतसेवा —46)

आखिर में वह प्रियतम उनको अपने भीतर ही मिल जाता है — ''अंतःकरण में तेरी मुग्ध मोहन मूर्ति छायी हुई है।'' — एकांतसेवा —6।

कवींद्र रवींद्र को भी वह असीम अपने अंतर में दिखाई देता है। वे आह्लाद से कहते हैं —— मेरे अंतःकरण में भी तेरा ही मोहक प्रकाश है।'' हे स्पर्शित।

कितने ही रंगों, गंधों, गीतों, छंदों आदि तेरी रूपों में तेरी लीला का विस्तार मेरे हृदय में भरा है। इसीलिए तो मेरे अंतर में तेरी शोभा इतनी आकर्ष है।—गीतांजलि

प्रिय के साथ खेल खेलने केलिए दोनों कवियों ने अपनी अपनी योजना बनी रखी है। प्रिय की प्रतिभा दोनों के अंतर में प्रतिष्ठित है। उस प्रिय से तो दोनों केवल विनय करते हैं कि रविबाबू — "हे नाथ! तू मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर। एक बार स्वीकार कर। मेरे हृदय में रह, अब लौटकर न जा।" — गीतांजलि वैंकटपार्वतीशकवि :— हे सर्वतोषिका! इस सालभंजिका को तेरे केली गृह में सदा स्नेह दो। इस पुष्पलता को तेरे उद्यानवन में रहने दो। हे भक्तवत्सल प्रभु! इस शुक को तेरे पिंजड़े में रहने दे, हे कल्याणधाम! इस सुवर्ण मंजूषा को तेरे चरण कमलों के समीप रहने दे × × × × × × × कृपया मुझे अपनाकर मेरा उद्धार करें।

— एकांतसेवा — 62

दोनों का आध्यात्म-प्रेम बडे ऊँचे दर्जे का है। हृदय के उत्सर्ग से प्रेम की अ मनोहर धारा प्रवाहित करनेवाले ये दोनों प्रेमी अपने अपने अभय के प्रतिनिधि थे, परवर्ती कविता को दोनों की दिव्य वाणी से बडी प्रेरणा मिली। दोनों का प्रस्थान बिंदु एक है, दिशा एक है और लक्ष्य भी एक है। दोनों को दिव्य दृष्टि मिली है जिस से वे उस प्रियतम को देखते हैं तो विश्व के कण-कण में व्याप्त है। वह उन्हें किसी लौकिक वैभव या धार्मिक आडंबर में दृष्टिगत नहीं होता जो उसे प्रत्येक वस्तु में निहारते हैं, उन्हीं को वह मिलता है। घन-गर्जना, विद्युत-निर्घोष, सागर की उत्तुंग तरंगें, वन पर्वत का गौरव, खिले हुए फूल, कलकल करते हुए नाले — ये सब उसी की लीला के विभिन्न रूप हैं। वह राजाओं का महाराजा है। जिसको दुनियावाले दीन, दरिद्र, अधम और तिरस्कृत कहते हैं, जो पसीना बहाकर श्रम में जुटे रहते हैं, उनके वह समीप रहता है। बहुमूल्य मंदिर, राजसी ठाठ-बाट सब क्षण भंगुर है।

यह सब तो माया के कारण है। उस में भूल से, भटकने के विरोध में ही दोनों का उपदेश है।

ये दोनों प्रेम-पथिक प्रेम की उस ऊँचाई तक चढ़े चले जाते हैं जिसे सामान्य व्यक्ति अपनी लोकमलिन दृष्टि से नहीं देख पाते। जो उनका प्रिय है, जिसके प्रति उनका मधुर भाव है, वही उनका स्वामी और बंधु भी है। वह तो उनका गुरु भी है। वे उससे प्रेरणा चाहते हैं, उससे शक्ति चाहते हैं, और उसका दर्शन करना चाहते हैं। उसका एक दिव्यराग, एक दिव्य संगीत, उनके हृदय के श्रवणों को चारों ओर सुनाई पड़ता है जिस से वे अपने को डुबा देते हैं। वे जानते हैं कि उनके प्रिय का निवास सत्य और समता में है। इसलिए वे अपने हृदय-मंदिर को अटल और प्रेम के उस धरातल पर प्रतिष्ठित कर देते हैं तो उसके निवास के अनुरूप सिद्ध होता है। उसका स्पर्श पवित्र है, उसका दर्शन कितना पावन है। उसके लिए आचरण और मन की पवित्रता चाहिए। उसी में उसकी पवित्रता की झाँकी मिल सकती है।

दोनों कवि दीन हैं, विनम्र हैं। वे अपनी दुर्बलता और प्रिय के सामर्थ्य को जानते हैं। अहंकार और मोह मानव के कितने प्रचंड शत्रु हैं, यह जानकर ही वे उन से मुक्ति की याचना करते हैं। दोनों की वाणी में दीनता के साथ आत्म समर्पण की भावना भी है। जहाँ वे अपनी दुर्बलता का अनुभव करते हैं वहाँ वे अपनी प्रयत्नशीलता का भी परिचय देते हैं।

दोनों का प्रिय बहुत मोहक और आकर्षक है। किंतु उन्हें अपनी दुर्बलताओं के कारण उससे डर भी लगता है। बंधनों से मुक्त करके असीम बनाने की शक्ति उसी मोहन आकर्षण में है। रवि बाबू कहते हैं — "तेरी कृपा से मैं अनंत बन गया हूँ।"

विश्व के व्यापक संगीत में उसी की मधुर वंशीध्वनि है। तड़ित निर्घोष उसी संगीत का रूप है, किंतु उसकी मोहकता को उसके भक्त ही समझ सकते हैं। अनासक्त

उसके स्पर्श को नहीं पहचानते। इसलिए प्रत्येक निर्णय में वे विपक्ष को अमीला करते हैं।

मन का संयमन ही उनकी पावनता है। जो मन प्रिय की माधुरी पर आसक्त हो जाता है वही संयत एकाग्र मन है, वही पावन है। वह स्वयं प्रिय-स्वरूप हो जाता है। सत्य उस पावनता की ही पीठिका और प्रेम उनको माधुर्य प्रदान करता है। रवींद्रनाथ अपने शरीर को सत्य का मंदिर मानते हैं जिसका अभिषेक वे प्रेम से करते हैं। वेंकटपार्वतीश भी सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं। आध्यात्म्य पथ के उस पथिक का संबल प्रेम है। इस प्रकार दोनों का ध्येय एक सा है। उनकी रुचि में एकाग्रता उनके प्रेम में अनन्यता, उनकी दृष्टि में समता और उनकी लगन में अदम्य तीव्रता है। दोनों का पवित्र मन एक ऐसे स्थल की कल्पना है जहाँ वे प्रिय से दिल खोलकर मिलते हैं।

आध्यात्म्य पथ के दोनों पथिक अपनी अपनी अनुभूतियाँ, अपनी-अपनी कल्पनाएँ और अपनी-अपनी अभिव्यंजना शैली लेकर वाणी के व्यापक लोक में अवतीर्ण हुए हैं। दोनों सहज कवि हैं। दोनों वाणी के धनी और अभिव्यंजना के सम्राट हैं।

दोनों के काव्य में सरलता है। दोनों की वाणी में प्रकृति इतनी निकट आ गयी है कि जितनी वह बच्चों के निकट होती है। इसी से उस में अनेक स्थानों पर मादक भोलापन भी दृष्टिगोचर होता है। ऋतुओं का परिवर्तन उनके लिए एक महान घटना बनकर आता है। कभी तो यह आश्चर्य होता है कि प्रकृति के प्रति यह आकर्षण रविबाबू को बंग-प्रकृति से मिला है या साहित्य से।

इस में संदेह नहीं कि प्रकृति का सहज उपयोग दोनों कवियों ने किया है। कवींद्र रवींद्र की अनुभूति की सृष्टि प्रकृति की साजसज्जा से होती है। प्रकृति के मोहन रूप से उन्हें प्रिय-माधुरी दृष्टि गोचर होती है। जब वे 'प्रेम-संकेत' का गीत

गाते हैं वे तो प्रिय और प्रकृति दोनों के सौंदर्य, दोनों की मोहकता के सजीव चित्र आँखों के सामने खींच जाते हैं। वे प्रेम-विभोर होकर कहते हैं —

1) प्रियतम। मैं जानता हूँ, यह तेरा प्रेम है जो पत्ते पत्ते पर स्वर्णिम बनकर चमक रहा है। जिस से अलसाये मेघ आकाश में घूम रहे हैं, सुवासित पवन मेरे मस्तक पर जलकण बिखेर जाता है। यह सब, हे मनहरण प्रभु। तेरा ही प्रेम है। आज प्रभात की आलोकधारा मेरी आँखों में, यह तेरा ही प्रेम-संदेश है जो जीवन के क्षण क्षण में मिला है।— गीतांजलि

2) पुष्प के मध्य भाग में स्वर्ण का कोष है। मैं वहाँ आनंद से बैठा हूँ और प्रकाश पद्म का पराग बिखेर रहा हूँ। आकाश में तरंगें उठी हैं, पवन में पुलक है, चारों ओर गीतों की लहरें उमड पडी हैं। प्रकाशपुष्प — गीतांजलि

3) जब जीवन का सरोवर सूख जाय, हृदय कमल की पंखुडियाँ अलसा जायें।

तब तू करुणा के बादलों के साथ उमड-घुमड कर आया। — गीतांजलि

रविबाबू के ये उद्धरण प्रेम और प्रकृति के चित्र एक ही साथ खींच देते हैं। जो प्रकृति-माधुरी नेत्रों के सामने आ जाती है वही अपने प्रेमोपहार को लेकर हृदय-मंदिर में आजाती है। प्रेम और प्रकृति का यह मधुर मिलन रवींद्र की कविता की विशेषता है।

वैंकट पार्वतीश का काव्य प्रेम और प्रकृति के सुरम्य चित्रों से भरा हुआ है। कुछ चित्रों को देख सकते हैं —— ''समस्त प्रकृति के विविध राग रागनियों से संपन्न है। हृदय प्रेम के सरोवर है। मन भावों से संपन्न है। शरीर नाना भाव विभावादि सात्विकानुभूतियों से पूर्ण है।'' — एकांतसेवा

''जहाँ प्रणय के झरने झरझर झरते हैं,

प्रणय की लताएँ बढती रहती हैं,

प्रणय पल्लव उत्पन्न होते हैं,

प्रणय की कलिकाएँ प्रस्फुटित होती हैं,

प्रणय के फूल खिलते हैं,

प्रणय की सुगंधि व्याप्त होती है,

प्रणय के फल जहाँ फलते हैं।'' — एकांतसेवा — 14

— रवींद्र अपने को संसार के किसी अन्य काम के उपयुक्त नहीं समझते। वे तो प्रभु के गीत गाने आये हैं और उसके लिए वे उससे अनुमति माँगते हैं। उनका गीत गाना एक सम्मान है और प्रभु से वे उसीकी याचना करते हैं।

''प्रभु। तेरे संसार के अन्य किसी भी काम के योग्य मैं नहीं। मैं यहाँ केवल तेरा गीत गाने केलिए आया हूँ। अपनी विश्व-सभा में मुझे गीत गाने की अनुमति देदे। प्रभु। प्रभु। अपनी विश्व-सभा में मुझे गीत गाने का सम्मान दे।

— विश्व-सभा — गीतांजलि

वैंकट पार्वतीश भी अपने को सर्वथा असमर्थ समझते हैं। बोलना, चलना, विचारना, देखना, सुनना सब कुछ उस परमात्मा की परम अनुकंपा से सीखने की व्यग्रता सूचित प्रभु की असीम अनुकंपा से ही मैंने बोलना सीखा। फिर भी जिह्वा उस जगदीश्वर के अनंत गुण-गायन में असमर्थ है। प्रभु की कृपा से चलना सीखा, पर प्रभु को प्राप्त करने का विधान यह शरीर नहीं जानता। उन्हीं की दया से विचारना सीखा, पर यह मन कभी सर्वेश्वर के बारे में सोचता नहीं। विभु के अनुग्रह से ही देखना सीखा, पर ये नयन आनंद कंद अनुरागमय परमात्मा को कभी देखते नहीं। प्रभु की कृपा से ही सुनना सीखा, पर ये कान प्रियतम की कथा-वार्ताओं को कभी नहीं सुनते। प्रभु की माया में कितनी मधुर-ममता है। उस ममता में कितनी विचित्र महिमा है। —एकांतसेवा

अखिल सृष्टि में व्याप्त चैतन्य स्वरूप परोक्षसत्ता के स्पर्श का अनुभव कर मानव

आत्मा जब दिव्य आनंद का अनुभव करने लगती है तब उसकी असीम सत्ता के प्रति प्रणयानुभूतियों का चित्रण है। रहस्यवाद का रूप ग्रहण कर लेता है। वैकटपार्वतीश कवि के काव्य ने रहस्यवाद के इस रूप को ग्रहण किया। जिस प्रकाश से ब्रह्मांड उद्भासित हैं उसी से मनुष्य प्रकाशित हैं। पर मायाजनित भ्रम जीव को इस प्रकाश से विलग रखता है। यही द्वैतभाव है। चेतना जागृत होने पर माया का पर्दा हटता है। तब जीव अपने ही भीतर ब्रह्म के प्रकाश का स्पर्श अनुभव कर दिव्य आनंद में मग्न होता है। वैकटपार्वतीश के इस गीत में जीव और ब्रह्म के अद्वैत संबंध की भावात्मक व्याख्या है।

वैकटपार्वतीश कवि समझते हैं कि जीव ईश्वर का ही अंश है। दोनों में अभिन्न संबंध है। ईश्वर के बिना जीव का अस्तित्व ही नहीं। साहित्य के यह भाव रहस्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है — वैकटपार्वतीश का यह रहस्यवाद विश्वकवि रवींद्र की गीतांजलि के अद्वैतवाद से प्रभावित है। रहस्यवाद के रूप में जो सांस्कृतिक देन रवींद्र ने गीतांजलि ने विश्व को दी, उसका मुख्य आधार वस्तुतः 'सर्ववाद' थी, जिसका मूल बीज उपनिषदों से अंकुरित तथा संतों की साधना और वैष्णव भक्तों की भक्ति से पुलकित और पुष्पित होता हुआ विश्वकवि रवींद्र के काव्य के अभिचिंतन से नयी हरीतिमा और नये फलपुष्प से सुसज्जित हुआ।

"हे हृदयाधिनाथ! अगर तू शांति अनंत जलनिधि है तो मैं आनंद नौका हूँ। अगर मैं निर्मल मानसरोवर हूँ तो तू सुंदर राजहंस है। अगर तू षोडशकला प्रपूर्ण चंद्रमा है तो मैं निर्मल चंद्रिका हूँ। अगर मैं मनोज्ञ कल्पवृक्ष हूँ तो तू भ्रमर है। यदि तू जलद है तो मैं तड़ित रेखा हूँ। यदि मैं नंदनोद्यान की वनलक्ष्मी हूँ तो तू रसराज श्रृंगार रस रसिक शिरोमणि हूँ। ~~विवि~~ यदि मैं सर्वमंगल स्वरूप हूँ तो तू शंकर है। तू मुझे मिल गया है और मैं तुझे प्राप्त हुई। अब यह आँख मिचौनी का

खेल क्यों? (एकांतसेवा–15)

रवींद्र में यह भाव सर्वत्र दीखता है। — "मेरे प्राणों में तुम अपनी लीला रचाओगे। यही सोचकर इस संसार में मैंने उन्हें धारण किया है। मैं तुम्हारे बाहु-बंधनों में बँधा रहूँगा। — गीतांजलि- 34

दोनों कवि प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु उन पर अनुग्रह नहीं करेगा तो वे कैसे समय काटेंगे — "यदि तुम दिखाई न दोगे तथा मेरी उपेक्षा कर दोगे तो मैं इस समय को किस प्रकार काटूँगा?" — गीतांजलि- 18

और एक जगह — "मैंने अपने हृदय में वरमाला गूँथ रखी है उसे स्वीकार करने के हेतु, तुम किस समय अपने मुख पर नीरव मुस्कान लिये हुए आओगे? उस दिन मेरा धन नहीं रहेगा, न कोई अपना-पराया रहेगा तथा यह पतिव्रता उस निर्जन रात्रि में अपने पति के साथ मिल जायेगी।" — गीतांजलि – 91

वैंकटपार्वतीश कवि कहते हैं कि — "प्रभु! मैं अनेक प्रकार से तेरी सेवा करती रही पर तेरा अनुग्रह आजतक नहीं हुआ।

"प्राणेश! तेरे गले में सदा माला पहनाती रही पर आँख उठा कर कभी तेरे दिव्य स्वरूप को देखा तक नहीं। तेरे पादपद्मों पर प्रणत होकर सदा नमस्कार करती पर मैं अपने हाथों से कभी पूजा तक नहीं कर पाई। तुझे अपने सम्मुख में देखते ही विस्मृत हो जाया करती पर प्रेमपूर्वक कभी बात तक नहीं की। अपने आप में ही भावनाओं के जाल को बनती रही पर अपनी कामना तेरे सामने स्पष्ट नहीं कर पाई। ऐसी विचित्र आनंदानुभूति में मैं विवश रही उसे अपराध समझकर इस भाँति अदृश्य हो जाना कहाँ तक उचित है!" — एकांतसेवा – 11

यों तो दोनों ही कवि प्रभु की इच्छा का अनुपालन करते हैं। दोनों का लक्ष्य

कविता में प्रभु को साकार करना है। रवींद्र की वाणी में मृदुल किंतु पृथक् वाग्वैदग्ध्य और अध्ययन की मंजुलता स्पष्ट है। वेंकटपार्वतीश पालिश करना नहीं चाहते थे। उनकी भाषा में सरलता अधिक है।

इस विवेचन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि वेंकटपार्वतीश और रवींद्र दोनों की अनुभूतियों में भी बहुत दूरी तक साम्य मिलता है। प्रिय के दोनों ही पुजारी हैं, दोनों ही विश्व के पर्दों के पीछे अपने प्रिय को देखते हैं जो सत्य और प्रिय के रूप में निहित हैं। वेंकटपार्वतीश का यह प्रेम अहिंसा के रूप में विद्यमान है। जो अहिंसा का व्यतिक्रम करता है उसको वेंकटपार्वतीशने मनुष्यता से गिरा हुआ बताया है।

रवींद्र की वाणी में अहिंसा के संकेत अवश्य मिल जाते हैं। पर उसका इतना स्पष्ट और उज्वल दर्शन नहीं मिलता।

दोनों का प्रेम विकास की अवस्था में दृष्टिगोचर नहीं होता। उसे हम विकसित दशा में ही देखते हैं। वे यत्र-तत्र सर्वत्र प्रेम की ही छवि निरखते हैं और वह प्रेम है उस प्रिय का।

कहने की आवश्यकता नहीं कि रविबाबू के काव्यगत सरल सौंदर्य को देखकर कभी-कभी विस्मय होने लगता है। उनकी गीतों में एक अपूर्व मौलिकता और मधुर रंगीनी है। छंदों की नई-नई सृष्टि में नई गति है। उनके विचारों में वह लोक है जिसके स्वप्न बड़े-बड़े मनीषी देखते हैं। महती संस्कृति की आत्मजा उसकी रचनाओं में एक सामान्य विरह-जीवन की भूमिका दृष्टिगोचर होती है। उनकी कविता में धर्म और कवित्व की एकता, शिक्षित और अशिक्षित लोगों की उपमाएँ, रूपक और भाव एक ही साथ दिखाई पड़ते हैं और विद्वानों और पंडितों के विचार पाठक को दंगकर देते हैं।

इसी प्रकार की कुछ विशेषताएँ वेंकटपार्वतीश की वाणी की भी है। दोनों की रचनाएँ अपनी सरलता, सामान्यता और भावप्रवणता के कारण सामान्य समाज के निकट आ गई हैं।

रवींद्र की गीतांजलि वनस्थली है तो वेंकटपार्वतीश की एकांतसेवा उस वनस्थली का एक भाग है। गीतांजलि में जो गंभीरता है, ध्वन्यात्मकता है जो अर्थ गौरव है चित्रमयता है, जो लाक्षणिकता है एकांतसेवा में उसका पूर्णतया अभाव है। गीतांजलि रवींद्र की विश्वविख्यात रचना है जिसका अंतर्राष्ट्रीय अभिनंदन हुआ है और जिस पर एक लाख बीस हजार का नोबेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। 'एकांतसेवा' वेंकटपार्वतीश की उत्कृष्ट रचना है जिसका समस्त आंध्रप्रदेश में बहुत प्रचार है। इसके गीतों को गाने में एक विशेष प्रचार होगा। रवींद्र की गीतांजलि के संबंध में भी यह कहना पूर्णतया यथार्थ है — "अभी नहीं कुछ पीढ़ियाँ गुजरने दीजिये तब इन कविताओं का मूल्य ऐसा होगा कि पथिक उनकी मधुर भावकता में अपने पथ-श्रम को भूल जायेंगे और नाविक नदी के लहरों में अपनी रम लहरियों को निमग्न कर देंगे। इन गीतों को गुन गुनाते हुए, एक दूसरे की प्रतीक्षा करते हुए दो प्रेमी हृदय-ईश्वर प्रेम की जादू भरी वाई में अपने-अपने मनोवेगों को निमग्न करके एक दिव्य नूतनता का दर्शन करेंगे।"

वेंकटपार्वतीश कवि की एकांतसेवा के संबंध में तेलुगु के आलोचक-प्रवर वेंकुलपल्लि कृष्णशास्त्रीजी ने जो कहा है वह अक्षरशः ठीक है — "वंग प्रदेश में कवींद्र रवींद्र की गीतांजलि का जो स्थान है वही स्थान तेलुगु प्रदेश में पार्वतीश कवि की एकांतसेवा का है।"

* * *

6 · 0 · 0

भावपक्ष व कलापक्ष

6·0·0

भाव पक्ष व कला पक्ष

गाने, गाने और अपनी बात दूसरे से कहने का कार्य मानव अनादि काल से करता चला आ रहा है। यही प्रवृत्तियाँ वास्तव में संगीत और साहित्य के मूलस्रोत हैं। मनुष्य की अनुभूति और उसे संतोषजनक रूप से अभिव्यक्त करने की चेष्टा — ये दो मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ ही साहित्य के विकास का इतिहास प्रस्तुत करती हैं। मानव के मन पर अनजान में ही सुख-दुःख-मयी अनेक भावनाओं के छायाचित्र अंकित होते गये और उन में से कुछ जब विशेष रूप से स्थिर हो गये तो स्थायी भाव कहलाये। इन्हीं स्थाई भावों की साहित्याभिव्यक्ति 'रस' नाम से अभिहित हुई।

मनुष्य अपने हृदय में जो कुछ अनुभव करता है उसे बिना कहे रह नहीं रह सकता। उसके मस्तिष्क की बनावट ही कुछ ऐसे तत्वों से हुआ है। मानव कभी चिंतन करता है, कभी स्मरण करता है और कभी अतीत की घटनाओं का सूत्र वर्तमान से मिलाने लगता है। कभी अपनी अनुभव-परिधि की वस्तुओं का वर्गीकरण करता है और कभी अपनी दुख-सुख की भावना को रसमयी वाणी में एक प्रभावशाली एवं मार्मिक अभिव्यक्ति देना चाहता है। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों से क्रमशः दर्शन, इतिहास, विज्ञान तथा साहित्य का जन्म होता है।

दर्शन, इतिहास और विज्ञान मानव की व्यक्तिगत भाव साधना है, समाज से उसका प्रत्यक्ष संबंध नहीं। किंतु साहित्य सामाजिक स्तर पर भावों की साधना है।

साहित्य भावों का आगार है। किंतु भाव भाषा में मूर्त रूप धारण करते हैं। इसलिए मानव संस्कृति के विकास के साथ-साथ जहां भावों की विविधता हुई वहाँ उन भावों को एक संक्षिप्ततम भाषा में किंतु सशक्त रूप में व्यक्त करने की मानव प्रवृत्ति भी

सहज ही पैदा हो गई। साहित्य साधना सम्मिलित रूप में भाव साधना और भाषा साधना है।

प्रत्येक वक्ता अपनी बात को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उसे विशिष्ट प्रकार से कहता है। ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपनी बात साधारण व्यक्ति से भिन्न एक विचित्र चमत्कारयुक्त अभिव्यक्ति पाती है तो वह अतीव प्रभावशाली बन जाती है। और उसका प्रभाव अमिट हो जाता है। केवल साहित्यक लोगों में ही नहीं, अशिक्षित और निरक्षर लोगों में भी अपनी बात को क चमत्कारपूर्ण ढंग से कहने की प्रवृत्ति होती है। नीचे लिखे वाक्य इसके प्रमाण है —

''घोडा और पेडा हाथ फेरने से बढता है। गाय और राय जो करता है वही होता है। उपर्युक्त वाक्यों में अनुप्रास का चमत्कार एवं वर्गीकरण की प्रवृत्ति भाव की दृष्टि से ही अतः दोनों वाक्य साधारण वाक्य से अधिक चमत्कारपूर्ण और अधिक प्रभावशाली है।

भावपक्ष का संबंध मानव मन में पैदा हुई विभिन्न अनुभूतियों से है और कला पक्ष का संबंध उन अनुभूतियों को विशेष उत्कर्ष रूप में — साधारण पूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति करने से है। साहित्य में जब अनुभूति और अभिव्यक्ति का उचित सामंजस्य होता है तो उच्चकोटि के प्रभावशाली साहित्य का निर्माण होता है।

साहित्य की आत्मा और शरीर जिन तत्वों (भावपक्ष तथा कला पक्ष) से बनते हैं उनका सैद्धांतिक स्पष्टीकरण असंगत होगा। यह समझलेना आवश्यक है कि भावपक्ष में क्या क्या आता है और कलापक्ष के कितने विभिन्न अवयव हैं।

भावपक्ष :—

साहित्य में भावों का प्राधान्य तो अनिवार्य ही है। भावों के अभाव में साहित्य का अस्तित्व ही संभव नहीं है, प्रायः सभी मनुष्य अपने हृदय में समान भावनाएँ

रखते हैं। इसी कारण जब ये साहित्य में व्यक्त होते है तो प्रत्येक पाठक उनका आस्वादन करता है। स्थाई भावना वे है जो साहित्य में नव रस के नाम से प्रख्यात हैं। उनके नाम — श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शांत। इधर वात्सल्य और भक्ति रस की अवश्य प्रतिष्ठा हुई है अतः रस ।। माने हैं।

उपर्युक्त स्थाई भाव सभी मनुष्यों के मानस में बीज रूप में अवस्थित रहते हैं और उचित वातावरण मिलने पर जागृत हो उठते हैं। साहित्य के द्वारा इनमें से भी स्थायी भाव को कभी भी जागृत किया जा सकता है और उनका आनंद लिया जा सकता है।और स्वरूप साहित्य में सभी अनुभूतियाँ आनंदमयी होकर आती है। इसी कारण उनका उदात्तीकरण भी हो जाता है।

यों तो भाव संख्यातीत है जिनकी गणना संभव नहीं। फिर भी वे भाव जो सब के हृदय में समान रूप से अवस्थित हैं वे ग्यारह ही माने गये हैं। जो भाव क्षण-क्षण में परिवर्तित होते रहते हैं वे संचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। साहित्य सृजन में प्रतिभा निरीक्षण कल्पना आदि बातें अपेक्षित रहती हैं।

एकांतसेवा में हम मुख्यतया तीन रसों का चित्रण पाते हैं — 1) भक्ति रस 2) श्रृंगार रस 3) शांत रस।

सहृदय के हृदय में वासना व संस्कार रूप में स्थित देवविषयक रति स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारियों द्वारा रसावस्था को पहुँचकर आस्वादयोग्य बन जाता है, तब उसे भक्ति रस कहा जाता है। एकांतसेवा में प्रायः मधुरभक्ति का प्रतिपादन हुआ है। भक्त अपने को भगवान के श्रीचरणों पर आत्मसमर्पण कर आत्म विभोर हो जाता है। एक उदाहरण —— ''हृदयेश। तुझे क्या अभीष्ट है, मुझे यह मालूम नहीं, यह भी मैं नहीं जानती कि तुझे किस समय क्या चाहिए। इसलिए

प्रणय मंदिर के एक कोने में शांत-शृंगार पूजा वेदिका के पास निर्मल, अमृत, दूध, शहद
xxx शहद और मीठे फलों का संग्रह कर बहुत समय तक मैंने प्रतीक्षा की। अगर तेरा ऐसा ही व्यवहार रहा तो मैं कैसे सह सकती?''

यहाँ भगवान के प्रति अनुराग स्थाई भाव व्यंजित है। परमात्मा आलंबन है। भगवान के गुण तथा लक्षण उद्दीपन विभाव हैं। दीनता और आस्था संचारी भाव हैं। कवि के कथन तथा विनय अनुभाव हैं। इस प्रकार यहाँ पर देव विषयक रति-स्थायी भाव यहाँ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से पुष्ट होकर भक्ति रस की अभिव्यक्ति करता है।

भावुक भक्त अपने प्रभु को कैसे भूल सकता। उसकी स्मृति ही उसकी आत्मा है, वह स्मृति ही उसका जीवन प्राण है। प्रियतम की एक अनन्य अखंड स्मृति नित्य निरंतर मन में बनी रहती है। उसके अतिरिक्त सभी प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति का मन से विसर्जन हो गया है। उसका वह नित्य नूतन सौंदर्य, नित्य नवमाधुर्य, नित्य नया-नया रूप का ~~नित्य~~ विकास, नित्य नया नया प्रेम का गौरव, नित्य नूतन स्नेह, और नित्य नवीन भाव रात-दिन उसके मन में स्मृति रूप में सुशोभित है। उसके संगम की मधुर स्मृति उसके हृदय में नित्य निरंतर विराजमान रहती है। उसकी वह गुण-गरिमा, महिमा, उसके द्वारा प्राप्त सौभाग्य-सुख, उसकी वह रस-बरसाती मधुर मुस्कान, उसके मान करने पर आतुर होकर मानने की मधुर चेष्टा, उसकी सुधा मधुर रस की खानि वाणी, उसका वह मधुमय रूप सदा ही स्मरण रहता है।

भगवान प्रेम और भोगासक्ति कभी एक साथ नहीं रह सकते। — ''जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम, तहँ नहिं ~~राम~~xxx राम तुलसी कब विरहित हैं, रविरजनि इकठामौ।'' — इस मधुर प्रेम साधना में भोगासक्ति का ~~त्या~~ त्याग

अनिवार्य है। इसी के भक्त के शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर — इन पाँच रसों में शांत प्रथम है। शांत रस तात्पर्य — इंद्रिय मन का भोगजात से विमुख होकर केवल भगवान की सेवा में लग जाना है। भगवत् सेवा के बाद ही दास्य रति का भक्त इंद्रिय-मन का गुलाम नहीं रहता। वह सब की दासता से मुक्त करके एक-मात्र अपने स्वामी भगवान का दासत्व स्वीकार करता है। यही रस क्रमशः प्रगाढ होता हुआ मधुर रति में परिणत हो जाता है। इस में अहं की पूर्ण विस्मृति और निरंतर प्रियतम की मधुर सुख स्मृति ही जागृत रहती है।

यह मधुर प्रेम बड़ा ही विलक्षण है। इस में श्रृंगार है पर राग नहीं है, भोग है पर लौकिक अंग संयोग नहीं, आसक्ति है पर अज्ञान नहीं है, वियोग है पर विछोह नहीं है, त्याग है पर सन्यास नहीं है। प्रलाप है पर बेहोशी नहीं है, ममता है पर मोह नहीं है, अनुराग है पर कामना नहीं है, देह है पर अहं नहीं है, ब्रह्म है पर निर्गुण नहीं है, मुक्ति है पर लय नहीं है।

'एकांतसेवा' में इस मधुर भक्ति के कई एक उदाहरण मिलते हैं। सहृदय के हृदय में वासना व संस्कार रूप से स्थित रति स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और संचारियों द्वारा रसावस्था को पहुँचकर आस्वादयोग्य बनता है। तब उसे श्रृंगार के दोनों पक्ष — संयोग और विप्रलंभ दोनों का सुंदर चित्रण हुआ है। संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष की अधिकता है। कवि ने अपने को स्त्री तथा परमात्मा को प्रिय समझकर श्रृंगार का चित्रण किया है।

<u>संयोग</u> :—

हे प्रणयाधिनाथ। आनंद के नंदनवन में जहाँ प्रणय के झरने झरझर झरते हैं, प्रणय की लताएँ बढ़ती हैं, प्रणय पल्लव उत्पन्न होते हैं, प्रणय की कलिकाएँ अंकुरित

होती हैं, प्रणय के पुष्प विकसित होते हैं, प्रणय की सुगंधि व्याप्त होती है, प्रणय के फल फलते हैं। जहाँ प्रणय ही प्रणय सर्वत्र बनकर प्रणय लीलामृत तरंगों में, प्रणय के झूलों पर अनुराग से झूलते, हैं प्रेम गीत गाते, प्रणय शासन को मनाते हुए, प्रणय साम्राज्य का पालन करेंगे। आजा, आजा।

यहाँ पर भगवान् कवि विषयक रति आश्रय है और कवि आलंबन। प्रणय तरंग प्रणय पल्लव आदि उद्दीपन है। दूसरा प्रमुख पक्ष विप्रलंब श्रृंगार का चित्रण अधिक हुआ है।

''हे हृदयेश। उस दिन को जब मंदिर के उद्यानवन में सुपुष्पित माधवी कुंज में तेरे सामने में बैठकर तेरे निर्मल गीत को वीणा पर बजाती रही तब निर्दय होकर मुझे छोड गया था। जब तुझे पसंद ही नहीं था तो उस सोने की वीणा से मेरे किस काम का?'' — इस पद में पूर्वानुराग का चित्रण हुआ है। एकांतसेवा में विप्रलंब श्रृंगार के कई पद मिलते हैं।

शांत रस :— सहृदय के हृदय में स्थित निर्वेद स्थाई जब विभाव, अनुभाव और संचारियों द्वारा रसावस्था को पहुँचकर आस्वादयोग्य बनता है तब उसे शांत रस कहा जाता है।

''अस्फुट चंद्रमा के अंतराल में, भव्य ध्वनि से ध्वनित, निर्मलतम वाहिनी गर्भ में से झरनेवाले झरने में से, सोनेवाली विरहिणी के गीत में एक प्रेम की किरण रही होगी। रमण के मंदिर के प्रांगण में मर्मनीय मल्लिका कुंज में थोडा सा सुख मिलता होगा। स्वर्ग लोक में नंदनवन में पारिजात वृक्षों के पार्श्व में लताओं के झूलों पर गानेवाले देवताओं के गाने में जरा सा आनंद रहा होगा। यह सब सुखकर शुभप्रद, आनंदप्रद होगा। पर तेरे दिव्य सौंदर्य के प्रति द्वंद्वता करने प्रकृति सौंदर्य कहाँ तक ठहरता है? (नहीं)''

''अतुलनीय निर्मल अत्यंत सुंदर तेरे मुख पर टिकी हुई मेरी दृष्टि तथा तेरे

पादपद्मों पर लगा हुआ मन तुझे छोड़कर जाना चाहते हैं क्या? अंतःकरण में तेरी मुग्ध मोहन मूर्ति छायी हुई है। आँखों के अंदर तेरा प्रतिबिंब अंकित है। तेरा नाम कानों को सुनाई देता है। मैं अपनी इस अल्प शक्ति से तेरे समीप पहुँचने तक तेरे पादपद्मों की पूजा अत्यंत भक्ति भावना से करती रहूँगी।''

इन पदों में आत्मनिवेदन सुंदर रूप में हुआ है। इस प्रकार एकांतसेवा में इन्हीं रसों का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। भाव पक्ष एकांतसेवा का शालीन विचारों से ओतप्रोत है।

जहाँ तक कला पक्ष का संबंध है — इस में चार बातें आती हैं — 1) भाषा 2) अलंकार 3) छंद 4) वर्णन।

<u>भाषा</u> :—

भाषा ही वह उपकरण है जिसके सहारे भाषा नहीं होगी तो काव्य में कुरूपता आ जायगी और उसकी दर्शनीयता कम हो जायगी। भाव जितने ही तीव्र तथा अनुभूत हों किंतु उन्हें यदि व्यक्त नहीं किया जायगा तो फिर उनका अस्तित्व ही क्या? और वे व्यक्त केवल भाषा में ही किये जायेंगे। अतः भाषा का निर्दोष एवं गुणसंयुक्त होना अत्यंत आवश्यक है। भाषा का उत्कृष्टतम रूप है कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहा जाय। काव्य-साधना केवल भाव-साधना ही नहीं है। भाषा साधना भी उसका अनिवार्य अंग है। महान कवि महान भाषा शिल्पि भी होते हैं। वे केवल भाषा का प्रयोग ही नहीं करते, उसका निर्माण भी करते हैं। कविता-कामिनी के हृदय की परख तो बाद की वस्तु है, यदि वह आकर्षक वस्तुओं में परिधानित नहीं है तो उसका आकर्षण ही समाप्त हो जायगा। भाषा यदि सशक्त है तो वह भावों की तीव्रता में तथा दर्शनीयता में भी सहायक होगी। शब्द शक्ति, माधुर्य प्रसाद आदि गुण,वैदर्भी पांचाली आदि रीतियों और परुषा, कोमला आदि वृत्तियों से भाषा संपन्न बनता है।

एकांतसेवा की भाषा बड़ी सरल तथा सरस है। माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से पूर्ण है। पाँचाली तथा वैदर्भी रीति एवं कोमलवृत्त से संपन्न है। इनकी भाषा आदि से अंत तक भाषा में कोमलता है। कोमलकांत पदावली से मंजुल एवं प्रांजल बन गया है। पदलालित्य, शब्द-चयन और वर्ण-मैत्री इस भाषा के अन्य गुण हैं। किसी भी पद को देखें, ऊपर के सभी गुण मिलते हैं। सर्वत्र भाषा में प्रवाह है।

<u>अलंकार</u> :—

भाषा से इनका घनिष्ट संबंध है और ये उससे पृथक नहीं किये जा सकते। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, जिनका साहित्य में नामकरण किया जाता है। उनका प्रयोग अशिक्षित निरक्षर व्यक्ति तक करते देखे जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि अलंकार केवल मस्तिष्क की उपज ही नहीं है, भाषा से उनका सहज संबंध है।

अलंकार तीन प्रकार के माने गये हैं — 1) शब्दालंकार 2) अर्थालंकार 3) उभयालंकार।

अलंकार भाषा के लिए सचमुच आभूषण हैं, भार रूप नहीं किंतु 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। काव्य में अलंकार भावों को तीव्र करने केलिए आते हैं। शब्दालंकार शब्दों में चमत्कार लाते हैं। अर्थालंकार ~~शब्दों में~~ अर्थों में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। उभयालंकार शब्द और अर्थ दोनों में चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

<u>उपमा</u> :—

जहाँ उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक चारों ही शब्द द्वारा कथित हों वहाँ पूर्णोपमा होती है।

"हे कोयले! हल्दी से पूर्ण सुमंगल सूत्र सौभाग्य रेखा में बाँधी गयी है। प्रकाशयुक्त दर्पण में अद्भुत-मयमूर्ति अंकित है। सुसज्जित सभा में विज्ञान दीप प्रज्वलित है। किले के सिंहद्वार पर दिग्विजय की पताका फहराया गया है। विज्ञान की

सीमाएँ विहार करने के अतिरिक्त परमधाम में जाने के अतिरिक्त और क्या चाहिए? मलयमारुत के मृदु मधुर वीचों में अमृतवल्ली नृत्य कर रही है। मलयमारुत कोमल राग में है कोयल। गीत गा।"

"यह शैल सरिता बिना सूखे अमृतार्णव में जा मिली, यही बहुत है। इस फूलों की माला को बिना सूखे ही प्रभु ने इसे धारण किया। यही पर्याप्त है। बादल से जो बूँद निकली और सुंदर मोती जैसी बनी। समुद्र के भूखे गर्भ में निर्मल बहुमूल्य वस्तु जैसे बना। पंक निमग्न दुर्बल कीटक अत्याण विजय शीघ्र जैसे बना हो, मेरे दिव्य संदर्शन सौभाग्य से मैं धन्या बनी और कृतार्थ हो गई।

<u>उत्प्रेक्षा</u> :—

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाय, वहाँ ~~उ~~ उत्प्रेक्षा। जनु, मनु, मानो, जानो आदि इसके ~~वाचक~~ वाचक शब्द हैं।

"आत्मा को इस भावना का ~~अत्येक~~ उद्वेग हुआ है कि मानो मैंने शरीर पर चंदन का लेपन किया हो। आँखों में काजल सँवारा हो, कानों में अमृत रस को ~~क~~ पहुँचाया हो, जिह्वा पर मधु की धारा बहाई हो। नाक में सुगंधित वायु व्याप्त हो। प्राक् बाह्य द्वार के घंटा निनाद के साथ आकाश में घंटारव हुआ है। घन उदयरागानुभूति में प्रभा की कांति मिली है। भाव विद्युल्लता के प्रदीप में भानु की दिव्य प्रभा की राशि अंतर्धान हुई है। प्रमुदित प्राण पवनांकुरों में सुललित उदय नयन विलसित हुआ है। संभवतः यह विभु के ही चरणों की सेवा करने की वेला हुई हो। कोकिले! वर मनोहर पंचम स्वर उठाकर गाती क्यों नहीं हो!"

<u>अतिशयोक्ति</u> :—

जहाँ प्रस्तुत का बढ़ा-चढ़ाकर लोक मर्यादा के विरुद्ध वर्णन किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होती है। "हृदयेश! तुझे क्या अभीष्ट है, मुझे यह मालूम नहीं,

यह भी मैं नहीं जानती कि तुझे किस समय क्या चाहिए। इसलिए प्रणय वेदिका के पास निर्मल अमृत, दूध, शहद और मीठे फलों का संग्रह कर रखे। बहुत समय तक मैंने प्रतीक्षा की। अगर तेरा ऐसा ही व्यवहार रहा तो मैं कैसे सह सकती?''

स्वभावोक्ति :—

जहाँ किसी वस्तु का स्वाभाविक वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है। ''विश्वेश्वर। प्रदोष की वेला में ही अनुराग का उदय हुआ। कुएँ के सरोवर में कलकल निनाद का आरंभ हुआ। दिव्य सौध में दीपों का प्रकाश हुआ। मंदिर में घंटे बज उठे। पूर्व दिगांगना ने सोने का छत्र धारण किया। विश्वसुंदरी चादर से हवा करने लगी। सारी प्रकृति तेरे अखंड आनंद भवन के प्रांगण में तेरी प्रतीक्षा में खड़ी है। तुझे अपनी भूख की चिंता भी नहीं। भोग का समय हुआ। स्वामी। आजा और ग्रहण कर।''

भ्रांतिमान :—

जहाँ एक पदार्थ या स्थिति को भ्रम से दूसरा पदार्थ या स्थिति मान लिया जाय वहाँ भ्रांति मान अलंकार होता है। उदा —— ''पद्मालय में प्रभु रहा होगा, यह देख राजहंस दौड़कर जा रहा है। आम्रवन में अपना प्रिय रहा होगा, समझकर शुक शुक बोल रहा है, सुंदर डालों पर मनोहर रहा होगा, यह जानकर कोयल कूहू कर रही है। पुष्पित कुंज में प्रभु रहा होगा, यह —— मानकर मयूर नृत्य कर रहा है। हे मधुकर। प्रणयनाथ इधर उधर भाग जाने के पहले ही पकड़कर शीघ्र पुष्परथ में ले आना।''

संदेह :—

जहाँ किसी वस्तु के संबंध में अनेक वस्तुओं का संदेह हो और सदृश्य के कारण अनिश्चय बना रहे, वहाँ संदेह अलंकार होता है। उदा —— ''प्रभु की पूजा के

समय संभवतः कोई अपराध बन पड़ा हो, प्रणयनाथ से बातें करते समय क्या कह गया हो, विश्वमोहन मूर्ति का गुणगान करते समय क्या गाया गया हो, प्रणय स्वरूप की प्रार्थना के समय क्या प्रार्थना की हो, फूलों की माला हाथ में ही रह गई, आरती भेंट, नैवेद्य, तांबूल आदि सब - कुछ जैसी रखे थे, वैसे ही रह गये, ज्ञान विज्ञान संपन्न प्रभू जो चला गया है वह पुनः वापस तो नहीं आ रहा है, विव्हल स्थिति में मुझको जो अपराध बन पड़ा है, उसके आधार पर प्रभू का मेरे ऊपर क्रोध करना कहाँ तक उचित है? मेरी दयनीय स्थिति से उन्हें अवगत कराकर अपने साथ ही के ले आना। भूलना मत।''

अनुप्रास :—

जहाँ वर्णों की समानता हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। उदा — ''हे प्रणयाधिनाथ! आनंद के नंदनवन में जहाँ प्रणय के झरने झरझर झरते हैं, प्रणय की लताएँ बढ़ती हैं, प्रणय पल्लव उत्पन्न होते हैं, प्रणय की कलिकाएँ अंकुरित होती हैं, प्रणय के पुष्प विकसित होते हैं, प्रणय की सुगंधि व्याप्त होती है, प्रणय के फल फलते हैं, जहाँ प्रणय ही प्रणयसर्वस्व रहता है वहाँ हम दोनों दंपती बनाकर प्रणय लीलामृत तरंगों में प्रणय के झूलों पर अनुराग से झूलते, प्रेम गीत गाते, प्रणय शासन को मनाते हुए, प्रणय साम्राज्य का पालन करेंगे।

इस प्रकार एकांत सेवा में अलंकार सहज ही आये हैं।

छंद :—

मानव जीवन में संगीत की महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। ताल, लय और स्वरयुक्त संगीत हमारे मनोभावों को तरंगित करने की अद्भुत क्षमता रखता है। केवल मानव ही नहीं, पशु-पक्षी भी संगीत के प्रभाव से मुक्त नहीं। संगीत की इसी महत्ता

को इतिहासज्ञों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है और कहा है। मनुष्य ने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी आंतरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए संगीतमयी भाषा को अपनाया है और यही कारण है कि कविता भी संगीत के प्रभाव से अछूती नहीं रही। कविता संगीत का आश्रय ग्रहण करके हमारे मनोवेगों को तीव्रभाव से जाग्रत और उत्तेजित कर देती है। कविता में छंद की आवश्यकता संगीत की महत्ता की स्वीकृति का ही लक्षण है।

एकांतसेवा में लयात्मक छंदों का प्रयोग हुआ है। स्वच्छंदवादी होने से कवि ने पदशैली को अपनाया है। प्रत्येक पद राग-रागिनियों में खरा उतरता है। अतः उस में वेंकटपार्वतीश कवि ने गीति-तत्वों का भी अद्भुत समन्वय किया है। सभी पदों को संगीत के वाद्य-यंत्रों पर गा सकते हैं और भावों का पूर्ण आनंद ले सकते हैं।

वर्णन की शक्ति भी उन आवश्यक तत्वों में से एक है। उपर्युक्त संपूर्ण तत्वों का यंत्रवत् सामंजस्य सौंदर्य विधायक नहीं होगा। जब तक कि वर्णन होना ठीक नहीं होगी। कवि के एक एक शब्द में एक एक वाक्य में यह तत्व आवश्यक है। शब्दों का चयन और उनका नियोजन एक लंबी साधना का सुपरिणाम होता है। एकांतसेवा में इस वर्णन तत्व सुंदर समावेश हुआ है। इसके वर्णन में सर्वत्र स्वाभाविकता है और रोचकता है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि एकांतसेवा में भावपक्ष तथा कलापक्ष का मणिकांचन योग हुआ है। यद्यपि कवि का दृष्टिकोण भावपक्ष पर ही अधिक रहा है पर सहज ही कलापक्ष के तत्व आ गये हैं। भाव पक्ष तथा कलापक्ष के सुंदर सामंजस्य के कारण 'एकांतसेवा' काव्य अलौकिक प्रभाव एवं सौंदर्य से संपन्न बना है।

* * *

7 · 0 · 0
निष्कर्ष

निष्कर्ष

बीसवीं सदी के पूर्वभाग में ही आधुनिक युग की कविता-क्षेत्र में नवीनता के दर्शन होने लगे। जो कविता अभी तक राजाश्रित थी वह जन-चेतना का प्रतीक बनी। तिरुपति वेंकटेश्वर कवुलु नामक दो कविरत्न ऐसे हुए जिन्होंने तेलुगु कविता को प्राचीन-बंधनों से मुक्त कर साधारण जनता के हृदयों तक पहुँचाया। ये कविद्वय संस्कृत और तेलुगु के प्रकांड पंडित थे। ये बहिर्मुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। इनकी कविता की विशेषता यह है कि भाषा व भाव दोनों सरस एवं सरल थे। तिरुपति कविद्वय महाकवि होने के कारण स्वयं एक महान संस्था थे। कोप्परपु कविद्वय, वेंकटरामकृष्ण कवियुगल, वेंकटपार्वतीश्वर कविद्वय उल्लेखनीय हैं। यों आधुनिक तेलुगु काव्य परंपरा में युगल कवियों को 'जंट कवुलु' कहते हैं।

2) कवियुगल परंपरा में उल्लेखनीय वेंकटपार्वतीश्वर कविद्वय है। प्रथम कवि-बालांत्रपु वेंकटराव नाम से अभिहित हैं, और द्वितीय ओलेटि पार्वतीश कवि के नाम से साहित्य जगत् में प्रख्यात हुए हैं। काकिनाडा में स्थापित आंध्र-ग्रंथ माला के द्वारा इनकी प्रतिष्ठा और बढ़ी तथा धीरे-धीरे इनकी कीर्ति चारों ओर फैली। विद्वानों का अनुमान है कि आंध्र में नयी कविता-परंपरा का श्रीगणेश करने का श्रेय इन्हीं को है। एक प्रकार से आधुनिक तेलुगु काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

3) यद्यपि ये अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी इन्हें विशेष लोकानुभव प्राप्त था। न तो इन दोनों ने गुरुमुख से ही संस्कृत का अध्ययन किया था और न अंग्रेजी का। केवल बंग भाषा का अध्ययन यत्किंचित किया था। वह समय कवींद्र रवींद्र की गीतांजलि के प्रभाव का था। समस्त भारतीय भाषाओं पर उस समय गीतांजलि का

प्रभाव पड़ा। ये विशेष रूप में से बंकिम चंद्र की रचनाओं के प्रति और कवींद्र रवींद्र की गीतांजलि के प्रति आकर्षित हुए। इन्होंने बंग भाषा का अध्ययन कर तेलुगु के सौंदर्य में चार चाँद लगाये।

वेंकटपार्वतीश्वर कवि प्रतिभासंपन्न कवि हैं। उनके काव्यों में उल्लेखनीय हैं — काव्य कुसुमावली (दो भाग), बृंदावन, भाव संकीर्तन एवं एकांतसेवा। इनके अधिकांश उपन्यास अनूदित हैं। श्री वेंकटराव ने वनाभिराम नामक नाटक लिखा है। पार्वतीश ने तारा शशांक तथा सुवर्णमाला नामक दो नाटकों की रचना की है। इन दोनों कवीश्वरों ने अनेक काव्यानुवाद भी किये। नवीन शैली में काव्यों का प्रणयन किया है। ये मूलतः प्रेम, सौंदर्य और जीवन की कोमलतम भावनाओं के सुकुमार कवि हैं। काव्य कुसुमावली से लेकर एकांतसेवा तक इनकी काव्य-साधना ने जीवन के अंतरंग तथा बहिरंग-सौंदर्य-बोध का अभिव्यक्ति की है। इन्हें सुरम्य अक प्रकृति के मनोरम सौंदर्य के प्रेरणा मिली है और यही सौंदर्य इन्हें कल्पना के स्वर्गलोक में उड़ा ले गया है जहाँ बाहर के संसार से आँखें मूँदकर चिरंतन सौंदर्य की राशि से सज्जित स्वप्न-जगत की इन्होंने सृष्टि की है। प्रकृति की आत्मा से साहचर्य स्थापित कर उसकी सुखद और आह्लादपूर्ण अभिव्यक्ति इस कवि युगल की काव्य-कुक कुसुमावली आदि प्रारंभिक रचनाओं में उपलब्ध होती है। अपने× रचनाओं×से आपने प्रकृति वर्णन में इन कवियों ने एक आह्लादमयी चेतन-सत्ता का आभास प्राप्त किया है तथा सुकुमार नारी के रूप में उसकी उपासना की है। सौंदर्य के ये कवि कुसुमावली में प्रेम के कवि बन गये हैं। काव्य कुसुमावली द्वितीय भाग में प्राकृतिक सुषमा के स्थान पर मानव जीवन के आंतरिक सौंदर्य का गुंजन है। इनकी कलात्मक चेतना धीरे-धीरे विकसित होते होते प्रकृति के माध्यम से मानव मानवात्मा में प्रविष्ट हुई और उसी के अंतर्भूत रूप-व्यापारों को इन्होंने काव्य का परिधान दिया है।

इन कवियों ने जीवन के कटु यथार्थ को आदर्श में परिवर्तन करने केलिए जन-जीवन की टूटी टहनियों को हरी-भरी कोंपलों से भरने के लिए उसके कुलप को सुंदर बनाने के लिए ~~उनके~~ वृंदावन और भाव-संकीर्तन में इन्होंने आध्यात्मिक-सौंदर्य का दिव्य आलोकन दिया है। भौतिकवाद के रूप में ये आज युग-जीवन के बहिरंग पक्ष को समुन्नत बनाने के साथ साथ आध्यात्मिक रूप में उसका अंतर पक्ष का ही उत्कर्ष चाहते हैं। इनका समस्त साहित्य मानव-जीवन की बहिरंग और अंतरंग दोनों ही रूपों में पूर्ण और सुंदरतम अभिव्यक्ति है।

4) अपने भाव-जगत की भाँति इनकी काव्य कला भी सौंदर्यप्रिय है। कलाकार के व्यक्तित्व की भाँति सुकुमार और कोमल है। उसमें मध्याह्न सूर्य की प्रखरता नहीं है, बालारुण रश्मियों का हलका प्रकाश है। इस कला की सब से बडी विशेषता उसकी चित्रमयता है। वह प्रत्येक अनुभूति, मुद्राओं, चेष्टाओं, वातावरण और विविध भंगिमाओं को ऐसी चित्रपटी प्रस्तुत करती है कि चलचित्रों के सदृश सारे चित्र आँखों के सामने नाचने लगती है।

कलापक्ष में इस कवियुग्म का स्तुत्य रूप उनका शब्द-शिल्प-सौंदर्य है। उनका एक एक शब्द उनके भावों की अंतरात्मा का प्रतीक है। इनके शब्दों में अनुभूति की रेखा है। इसका कारण यह है कि शब्दों की अंतरात्मा और शरीर का जितना सूक्ष्म-ज्ञान इन कवियों को है, उतना अन्य किसी कवि को नहीं। ये कवि भाषा, भाव और स्वरयुक्ति सामंजस्य द्वारा ध्वनि-चित्रण करने में बडे पटु हैं। इनकी कविता-कामिनी की कमनीय कांति अलंकारों की मंजुल-आभा से दीप्तिमान है। इनकी कला का अनन्य सौंदर्य इनके छंदों में प्रकट हुआ है। इनकी कविता के प्राणों में संगीत भरा है। छंदों ने ही उनके हृदय को स्पंदन दिया है। उनमें राग की धारा अनिवार्य रूप से व्याप्त है। उनकी गति में पूर्ण सामंजस्य है। 'वृंदावन' काव्य में विविध छंदों का प्रयोग मिलता है।

अन्य काव्यों में गीतों की प्रधानता है।

5) एकांतसेवा की भूमिका में तेलुगु के आलोचक प्रवर श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री ने कहा है — यह काव्य समीक्षा से परे है। बंगभाषा में रवींद्र की गीतांजलि का जो स्थान है, वही स्थान तेलुगु में इन कवियों से प्रणीत 'एकांतसेवा' का है। कवींद्र रवींद्र एवं वैंकटपार्वतीश्वर कवियों की आँखों में देश की समस्या झूलती रही। दोनों मातृ-मंदिर की सेवा में निरत रहे। दोनों की अभिव्यंजना में कवित्व की शक्ति है। दोनों को अपने गीतों पर विश्वास है जिनका धरातल सार्वजनीन है। जब रवींद्र यह कहते हैं कि तेरा पूजा संसार को कंगाल नहीं बनाती — तब वे स्पष्टतः अनन्य प्रेम की ओर संकेत करते हैं। वैंकटपार्वतीश कवि भी 'प्रेम' शीर्षक गीत में अनन्य प्रेम की व्याख्या करते हैं। दोनों को प्रिय विरह सता रहा है। प्रियतम से मिलने के कारण उनके गहन व्यथा की अनुभूति हो रही है। उनको यह विरह पृथ्वी भर में व्याप्त होता है। कवींद्र रवींद्र को इस विरह जन्य प्रतीक्षा, अतृप्त, आकांक्षा और व्यथा को प्रियतम लाते हैं। वैंकटपार्वतीश को भी यही स्थिति पसंद है। इस विरह-ताप से प्रिय का रूप व्यक्त होता है। दोनों मनीषियों का लक्ष्य अद्वैत-सिद्धि संयोग है। दोनों कवि दीन हैं, विनम्र हैं, वे अपने दुर्बलता और प्रिय के सामर्थ्य को जानते हैं। दोनों कवि प्रभु की इच्छा अनुपालन करते हैं। दोनों का लक्ष्य कविता में प्रभु को साकार करना है। रवींद्र की वाणी में पृथुल पांडित्य एवं अध्ययन की मंजुलता स्पष्ट है। वैंकटपार्वतीश की भाषा सरलता अधिक है। रवींद्र की गीतांजलि वनस्थली है तो वैंकट पार्वतीश की 'एकांतसेवा' उस वनस्थली का एक भाग है। 'गीतांजलि' विश्व-कवि की अनुपम कृति है तो 'एकांतसेवा' वैंकटपार्वतीश कवियों की 'एकांत साधना' की सिद्धि का फल है।

* * *

परिशिष्ट (अ) अनुवाद

एकांतसेवा :—

ना मेलंगुलेट — ना माटलो वेट
ना मराल कोंगु — ना वेलुंगु
ना क्यालि तेव — ना चूपुलो बाप
निलुचुगा। तन्नुगोलुचुवाक।
प्रकृति मदियेमो रागसंपन्न मय्ये
भावमदियेमो आनंद भरित मय्ये
चित्त मदियेमो ~~कान्के~~ प्रेम संसिक्त मय्ये
देह मदियेमो सात्विकाधीनमय्ये
किमुनि श्रीपादमुल गोल्चु केव्येमो?
रमणु नेकांत सेवकु समयमेमो?
चिम्मचीकटिलो वेलुगु चिगुरुलेत्त
मोडु कू गन्नुललो देलिच मोनलु वेच
हृदय केदारमुन गोरकु लिगुरुवेट्ट
भावसहकारमुन प्रेम पल्लवंप
वर मनोहर पंचम स्वरमुनेत्ति
पाडवेयम्म कोकिला। पाडवेमे ? —

भाव :— ~~धर्य~~ धैर्य नहीं है, विश्राम भी नहीं है, स्वभाव चंचल होने से मन विकल बन गया है। हवा में दीप की तरह है। जो मैंने किया या उसे ठीक करनेवाला कोई भी नहीं है। अतः दुखी होकर मैंने तुम्हारी प्रार्थना की। तुम्हारा अनुग्रह मिले तो स्वस्थ बनकर दिव्य रत्न के रूप में तुम्हारे घर में ही हे प्रभु। हमेशा रहूँगा।

2) अतरु नेम्मेन चंदन मलदिनदुलु
कनुल मकरंदु गादुक मुगिचिनदलु
वेकुल मधुरसंदुनु बोरिचिनदलु

जिह्व पै हैनेसोनल जिलिकिनद्लु
आत्म केमेमो युद्भीद मगुंचुनुडि
ब्रम्बाहिर्द्वारघंटारावंबु लोड
मिंटि घंटारवंबुलु मेलतिचि
घनतरंबैन चुद्यरागंबु लोड
नात्मराग प्रभापुंज भेद्यमध्ये
भावविद्युल्लता प्रदीपंबुलोड
भानुदिव्य प्रभारासि लीनमध्ये
प्रमुदित प्राण पवनांकुरमुल लोड
सललितोदय पवनमुल् संक्रमिंचे
विभुनि श्रीपादमुल गोल्चु वेलयेमो?
रमणु नेकांतसेवकु समयमेमो?
स्वरलहरिलीन नमृतंपु दरग लेगय
जल्लगा रागवल्लरि पल्लविंप
वर मनोहर पंचम स्वरमुनेत्ति
पाडवेमम्म कोकिला। पाडवेमे? —

<u>भाव</u> :— आत्मा को इस भावना का उद्वेग हुआ है कि मानो मैं ने शरीर पर चंदन का लेपन किया हो। आँखों में काजल सँवारा हो, कानों में अमृत रस को पहुँचाया हो। जिह्वा पर मधु की धारा बहाई हो। नाक में सुगंधित वायु व्याप्त हो। प्राक् बाह्य द्वार के घंटा निनाद के साथ आकाश में घंटाराव हुआ है। घन उदयरागानुभूति में प्रभा की कांति मिली है। भाव विद्युल्लता के प्रदीप में भानु की दिव्य प्रभा की राशि अंतर्धान हुई है। प्रमुदित प्राण पवनांकुरों में सुललित उदय पवन विलसित हुआ है। संभवतः यह विभु के श्री चरणों की सेवा करने की वेला हुई हो। कोकिले! वर मनोहर पंचम स्वर उठाकर गाती क्यों नहीं हो?

3) गगन कल्लोलिनी तरंग प्रभूत
मृदु मृदंगारवंबुतोड बदनुपरचि
भ्रमर सुंदरि पद्मासनमुनर्नुडि
डायिगा नप्पुडे श्रुति वेयुचुंडे।
श्यामसुंदर मोहन जलदमूर्ति
येचट गन्नुल बडियेनो येमो गानि
यप्पुडे विंतगा बुरिविप्पुकोनुचु
नेम्मि नेरजाण नृत्यमु नेरपुचुंडे
भ्रमांत बदुचुचि इदुचुचि तमक मडर
नालिकि पलुकुल गोरवंक कुलुकुलाडि
विंत योय्यारमुन जेवि वैतजेरि
चिलुक वेलितोड नेमेमो चेप्पुचुंडे
किनुनि श्रीपादमुल गोल्चु वेलयेमो?
रमणु नेकांतसेवकु समयमेमो?
गलमु सवरिंचुकोनि नूत्न गतुलु मेरय
लोकमोहनुमोदि सुलोकमुलनु
वरमनोहर पंचम स्वरमुनेत्ति
पाडवेकम कोकिला। पाडवेमे —

भाव :— आकाश के बादलों के गर्जन से भ्रमर ने अपनी गूंज मिलाई है। नील नीरद को देखते ही मत्तमयूर नृत्य करने लगे हैं। संभ्रम से इधर उधर देखकर तोता मैना मधुर संवाद में मग्न हुए हैं। संभवतः प्रभु के चरण कमलों की सेवा का समय हुआ होगा। कोयलें। अपने कंठ को ठीक कर नवीन राग रागनियों से उस भुवन मोहन के बारे में मृदु मधुर पंचम स्वर में गीत गा।

4) येदो विद्युल प्रभापुंज मिपुडु दोचे
नेदो भव्य वाद्य स्वन मिपुडु दोचे

नेदो सुकुमार मारुत मिपुडु वीचे
नेदो दिव्य परीमल मिपुडु वीचे
गनुलु तमकिंचि हृदयंबु कदलबारे
मेनु पुलकिंचि प्राणंबु लीनमय्ये
किमुनि श्रीपादमुल गोल्चु वेलयेमो?
रमणु नेकांत सेवकु समयमेमो?
अलरु गैदम्मि कोलनिलो जलुकनोट
बावन स्नान मोनरिंप बोवुदाक
श्रीमनोहरू पावाभिषेकमुनकु
दिव्यतम तीर्थ कलशंबु देच्चुदाक
क्रमुनि बूजिंचुटकु मृदुपद्ममुलनु
गांचन सुमंबुलनु सेकरिंचुदाक
प्राणिकिमुनाममंत्र जपंबुनंदु
मन्ननगुदाक नामेनु मरचुदाक
वर मनोहर पंचम स्वरमुनेत्ति
मधुरमुग मार्दवंबुगा मंजुलमुग
मानसानंदकरमुगा मंगलमुगा
पाडवेवम्म कोकिला! पाडवेमे?
कल्याणगीतिलो गलकंठि योके
प्रणयगानंबुलो भ्रमरिक चिलके
नानंदवार्धिने नवानेपुंटि
गल्गीपवे चिक गल्याणमूर्ति।

भाव :- कोई नया प्रकाश दिखाई दे रहा है, कोई नव्य भव्य वाद्य सुनाई दे रहा है, कोई नई बहार आ रही है, किसी दिव्य सुगंध का स्पर्श हो रहा है, नेत्र आनंदित हैं, हृदय, शरीर और प्राणों में उन्माद छाया हुआ है, हे कोयल! सरोवर के शीतल जल में स्नान कर आमेतक भगवान के पादपद्मों के प्रक्षालन के लिए पवित्र जल से पूर्ण

कलश ले आने तक, प्रभु के नाम स्मरण में तल्लीन हो अपने को भूल जाने तक, तू अपने मंजुल स्वर में भगवान के मंगलमय गीत गा जिस से मन आनंदित हो और आह्लादित हो।

मंगल गीतालाप में कोयल मग्न है, प्रणय गीतालाप में भ्रमर मत्त है, आनंदानुभूति में मग्न हो गई हूँ। हे मंगलमूर्ति। मंगल कर।

5) नी मनोहर मूर्ति निश्चल भक्ति
ध्यानंबु चन्मयत्वमुन
नेकाग्रदृष्टि तो नेनुन्नवेल
नी विलासंबुलु नीयोयारंबुलु
नीनर्तनंबुलु नेर्पुलु चूपि
विभ्रांतिलो मुंचि वेयुट नीप्पु
मुच्चट यय्येने मोहनाकार। ——

भाव :— हे देवा। जब मैं तेरी दिव्य सुंदरमूर्ति का गुण गाते तन्मय स्थिति में रहो, तुझे ही अपना सर्वस्व एवं लोक समझती रही तब अपने विलास, हावभाव आदि को दिखाकर मुझे भ्रम में डालने तुझे अखिर क्यों सूझी?

6) अन्यविस्मृति यसहायनोट
मनसुनित्यगलनि मानिनि नोट
प्रेम दापग लेनि प्रेयसिनोट
नेदुट नुन्नदिट प्राणेश्वरुनिन्नु
गौगलिंपटमन्न कोतुहलमुन
दरि चेरवच्चुटे तप्पुगानेंचि
दोनुरालिनि नन्नु विगनाडि चनुट
प्रियमुगा तोचने प्रेम स्वरूप। ——

भाव :— हे प्रेम स्वरूप। मैं भोली भाली हूँ। कुछ भी नहीं जानती। मन कहीं भी नहीं लग सकती। अपने प्रेम को छिपा नहीं सकती। समय में स्थित तुझ अपने प्राणेश्वर को गले लगाने की इच्छा से, निकट आने पर गलत समझकर मुझ वीना को यहीं छोड़कर निष्ठुर बनकर चले जाना क्या तुझे अच्छा लगा था?

7) निन्नात्म भावींचि निरूपम रक्ति
नीमीफि गानंबु ने चेयुवेळ
नागस्वनमु वीणासुस्वरंबु
लीलमै नीफरींति लीन मैनपुडु
सुस्वरंबुललो विशुद्ध भावंबु
गलसि रागंबुलो गलदेरिनपुडु
नालोनि निर्मलानंदैकरसमु
नीप्रेम रसमुलो निंडिनयपुडु
नि निलुवेल्ल बुलकिंप नमेनु मरचि
निदुरलो डायिगा नेनुन्न यपुडु
येरुगा कुंडग बच्चि येमेमोजेसि
प्रणय समाधिकि भंगंबु गूर्चि
कलकलनगुचु कनुग्रामि चनुट
याटगा दोचेने यात्मेश नीकु। —

भाव :— हे हृदयेश। अपने अंतःकरण में तेरा ही स्मरण कर, अत्यंत अनुराग से वीणा की झंकार के साथ साथ अपने मृदुमधुर स्वर को मिलाकर तेरा ही गीत गाते समय, मेरे राग के साथ भाव को एकाकार कर, अपने विनिर्मल आनंद रसास्वादन को तेरे प्रेम रस में भरते समय, सारा शरीर रोमांचित होते समय, अपनी सुधबुध खोकर जब मैं गाढ़ी नींद में रही, तब तेरा आना, अपनी प्रणय समाधि में विक्षोभ डालकर पागल की भांति चला जाना क्या तूने खेल समझा?

8) समद कोकिल कुहू स्वरमुल लोन
भावंबु चिगुरिंचु पाकुपाडि
ललित मोहन शुकालापंबुलंदु
शुकालापंबुलं×
प्रणयंबु दोलिकाडु पलुकुलु पलिकि
चंदनातिलकल स्वनमुललोन
मानसंबु गरंचु मंतनंबाडि
ननयाटि येलदेटि नादंबुलोन
प्रणयमंत्रंबुनु चाठंबु सेयि
पाददासिनि नाकु प्रत्यक्षमगुट
लोकयेलोयेने लोकेश नीकु। —

भाव :— लोकेश। कल कूजन में और मधुर स्वरालाप में कोकिल का भाव किशोर होना, तोते की मीठी बोली में प्रेम सरोवर करना, घने जंगलों में भ्रमरों को प्रेम के पाठ पढ़ा कर भी तेरी चरणदासी मुझ को दिखाई देने में प्रभु। तुझे कष्ट हुआ क्यों?

9) अंदंबु चेलुवंदु नव्वाललोन
बंगारु रत्नाल पतकाललोन
ब्रभविंचु नानंद वाप्पाल लोन
वेचूपुलोन लोपलिचूपुलोन
सर्वतोमुखुडने साक्षात्करिंचि
यंतगा मुद्दुगा नंदगाराक
याशल गोलुपुचु बलपिंप नीकु
वेडुक यय्येने विश्वस्वरूप। —

भाव :— विश्वस्वरूप। कहीं कहीं चमकनेवाली चोचों में स्वर्ण और रत्नों की मालाओं में, उमडनेवाले आनंदवायुओं में, बाह्य और आभ्यंतरिक दृष्टि में अत्र-तत्र सर्वत्र लक्षित हुए भी मेरी पकड में न आते हुए, आशा का संचार कराते हुए, तुझे क्लांत हो जाने

तक दौड़ाने में हो स्वामी। तुझे आनंद आता है क्यों?

10) यलोसयाम्बितिवेमौ यनि यासचैदि
यतुवपन्नोटिये जरणमुल गंडिगि
यलस्युव्वलुवये नडुगुल नोत्ति
यरविरिगड्डपे नासीनुजेसि
फलरसंबुल तोड वानीयमोसगि
पाति नेम्मेन जंदनंबलदि
तनियार कर्पूर तांबुलमिच्चि
श्रम बायजेयगा सरसनुजेरि
विरजाजि तुरलोल विसरबुनुंड
ना मेनु मरपिंचि नाकन्नुकप्पि
ईड्ड जलमुचेसि येगुट नीकु
न्यायमे तोचेने ना जीवितेश। —

भाव :— हे जीवितेश। तू थका आया है, ऐसा समझकर शीतल जल से पादकमलों-प्रक्षालन किया, बहुमूल्य रत्नों से चरण धोकर स्वर्ण पुष्प सिंहासन पर बैठाया, फल रसों का पानीय दिया, सुंदर शरीर पर चंदन लेपन किया, कर्पूर तांबूल दिया, इस प्रकार तेरे श्रम को मिटाने के बाद पार्श्व में बैठकर चमेली पुष्प चादर से पंखा करते समय मेरी आँखों में धूल झोंककर गायब हो जाना क्या तुझे उचित है?

11) चिरिदंड मेडलोन वेयुटे कानि
कन्नार नीमूर्ति गांचनेलेदु
निनुगांचि मुच्चने नित्तुटे गानि
प्रेमदीरग वक्क रिंपनेलेदु
येमेमो मनसुलो नेंचुटे गानि
तिन्नगा नाकोर्कि तेलुपनेलेदु

बोर्यबुलो सुप्ति पोडसूपबोलु
कनुललो जूपुलो गाविस्ल अम्मे,
शुभप्रदमुलो सुडिपुट्टबोलु
भक्ति लो बूजलो प्रांतुलु पोडमे,
नादंबुलो गंगनमु पुट्टबोलु
तलपुलो जीकटि विरिसे गाबोलु
मनसुलो देलिविलो मरपुलु दोचे,
आनंदमंदुले चपचारमनुचु
नक्षानैयुंडुटे यपराधमनुचु
मदिनेंचि योरोति मायलु सेय
भाव्यमे दोचेने प्राणेश नोकु। —

भाव :— प्राणेश। तेरे गले में सदा माला पहनती रही, पर आँख से उठाकर कभी तेरे स्वरूप को देखा तक नहीं। तेरे पादपद्मों पर प्रणत होकर नमस्कार तो करती रही पर अपने हाथों से कभी पूजा तक नहीं कर पाई। तुझे अपने समक्ष में देखते ही विस्मृत हो जाया करती पर प्रेमपूर्वक कभी बात तक नहीं की। अपने आप में ही भावनाओं के जाल को बुनती रही पर अपनी कामना तेरे सामने स्पष्ट नहीं कर पाई। ऐसी ही विचित्र आनंदानुभूति में जब मैं विवश रही तो उसे अपराध समझकर इस भाँति अदृश्य हो जाना तुझे अच्छा लगा क्यों?

12) भावंबुचेनेन बलुकुलनेन
गार्यंबुचेनेन गार्यंल नेन
नेरिगियो येरुगको येजेसिनट्टि
तप्पु लुडिन मदि दलपगाबोक
मन्निंचि मनसुंचि मरियोक्कसारि
कन्नुल बहुमय्य करुणातरंग।

निनुवीडि क्षणमैन निलुवंगजाल
दरिसेववोवय्य तत्वस्वरूप। —

भाव :— हे तत्वस्वरूप। मनसा, वाचा, कर्मणा — किसी भी स्थिति में याहे, आनंद में मुझ से जो अपराध बन पडे हैं, उन्हें भूल जा। क्षमा करके पुनः एक बार मुझे अपना दर्शन दे। मैं तुझे छोडकर एक क्षण भी नहीं रह सकती। भाव यह है कि परमात्मा के संयोग के अभाव में जीवात्मा को बेचैनी है।

13) येवि नीकिष्टमो येरुगनुगान
नेपुडेविमलयुनो येरुगनुगान
प्रणयमंदिरमुलो बडमटिविंट
शांत शृंगारपूजावेदिचेंत
नेलवंक दोन्नेलो निर्मलामृतमु
तेलिडब्बि गिन्नेलो वेनेपाकमु
~~नेनि~~- चिगुरुपल्लेरमुलो श्रीरोचनंबु
अलरुचोविंट दोयनिडोरपंड्लु
समकूर्चि युंचिति जालसेपाये
हृदयेश। चिट्टुलेन नेट्टुलोर्चुवान

भाव :— हृदयेश। तुझे क्या अभीष्ट है, मुझे यह मालूम नहीं, यह भी मैं नहीं जानती कि तुझे किस समय क्या चाहिए। इसलिए प्रणय मंदिर के कोने में शांतशृंगार पूजा वेदिका के पास निर्मल अमृत, दूध, शहद और मीठे फलों का संग्रह कर रखा। बहुत समय तक मैंने प्रतीक्षा की। अगर तेरा ऐसा ही व्यवहार रहा तो मैं कैसे सह सकती।

14) रजनीमुखंबुन रागंबु मेरसे
गलुव पुट्टिंटिलो गलकलिचिरसे
दिव्य दीपंबुलो दीपालुवेलिगे
मल्लेपुवुलो गंटलु मोगे

भासती मणि पट्टे बंगारुगोडुगु
दिव्यसुंदरि वीचे विरिचामरंबु
भवदखंडानंद भवनांगणंबु
आकलेन नैरुंग वेतिवेमय्य।
आरगिंपगवेलयय्ये रावय्य। ——

भाव :— शिवेश्वर। प्रदोष की वेला में ही अनुराग का उदय हुआ। कुएँ के सरोवर में कलकल निनाद का आरंभ हुआ। दिव्य सौध में दीपों की प्रकाश हुआ। मंदिर में घंटियाँ बज उठी। पूर्व दिगांगना ने सोने का छत्र धारण किया। दिव्य सुंदरी चादर से हवा करने लगी। सारी प्रकृति तेरे अखंड आनंद भवन के प्रांगण में तेरी प्रतीक्षा में खडी है। तुझे अपनी भूख की चिंता भी नहीं। भोग का समय हुआ। स्वामी। आज और ग्रहण कर।

15) शांत रूपानंत जलराशि वीवु
नवनवैकानंद नौकनु नेनु
संशुद्ध मानस सरसिनि नेनु
आनंदमय राजहंसनु नीवु
सल्लीत संपूर्ण चंद्रुड वीवु
नवलावि हृत्पक्षिक नेनु
लावण्यमय कल्पलतिकनु नेनु
रागरंजित भृंग राजंव वीवु
सकल जीवामोद जलदंव वीवु
निर्मल सौदामनीरेख नेनु
वरनंदनोद्यान वनलक्ष्मी नेनु
तरुण शृंगार माधवुडवु नीवु
दिव्य मूर्तिवि नीवु दीप्तिनिनेनु
सर्वमंगल नेनु शंभुड वीवु

नीवु दविकीत, नाकु नीवु दविकितिवि
येल वोगेदविक हृदयाधिनाथ। —

भाव :— हे हृदयाधिनाथ। अगर तू शांति का अनंत समुद्र है तो मैं आनंद नौका हूँ। अगर मैं निर्मल मानसरोवर हूँ तो तू सुंदर राजहंस है। अगर तू षोडशकलाप्रपूर्ण चंद्रमा है तो मैं निर्मल चंद्रिका हूँ। अगर मैं मनोज्ञ कल्पवृक्ष हूँ तो तू भ्रमर है। यदि तू जलद है तो मैं निर्मल सौदामिनी रेखहूँ। यदि मैं नंदनोद्यान की वनलक्ष्मी हूँ तो तू रसराज शृंगार रस रसिक शिरोमणि माधव है। यदि तू दिव्य मूर्ति है तो मैं हूँ दीप्ति। यदि मैं सर्वमंगल स्वरूप हूँ तो तू शंकर है। तू मुझे और मैं तुझे प्राप्त हुई हूँ। अब तू क्यों छिपता है।

16) आनंदनवनंद नाराम सीम
प्रणयतरंगिणुल प्रवहिंचु चोट
प्रणय लताकुल प्राकेडुचोट
प्रणय पल्लवमुलुद्भविंचुचोट
प्रणय कोरकमुलु प्रभविंचुचोट
प्रणय पुष्पंबुलु प्रसविंचुचोट
प्रणय सौरभवमुलु प्रसरिंचुचोट
प्रणय फलंबुलु फलियिंचुचोट
प्रणयमे लोक लोकमे परगिनचोट
प्रणय शकुंतदंपतुलमै मनमु
प्रणय लीलामुल रसतरंगमुल
प्रणय डोला परंपरल मध्यमुन
प्रणयान क कृतुबु प्रणयगीतमुल
प्रणयंबु पल्लविंपग बाडुकोनुचु
प्रणय रूपानंद भाग्यंबु गांचि
प्रणय शासनमुन प्रणय राज्यंबु
पालिंत मिंक रम्मु प्रणयाधिनाथ। —

तूरूपु गोनलो दुंदुभि स्वरमु
वीणा स्वनंबुलो विनराकयुंडि
नंदन वनमुलो नागस्वरंबु
नूदके कोकिला योर्किंत सेयु।
येलमावि कोम्मल इम्मुलनुंडि
सरसंपुनोडल जाडलनुंडि
सलिराकु दोवल लावुलनुंडि
केंदम्मि कोलकुल केलकुलनुंडि
पन्नीटि सेलयेल्ल पज्जलनुंडि
वलपु रालि यल्लवेपुलनुंडि
प्रमदंबु निंडार वंबंबु मीर
बविर्तवुगा नोक्क परुगुन बोयि
वेन्नेल बयलेल्ल बोब्बिचियेन
दिक्कु दिक्कुल केगि तिलकिंचियेन
जुक्कल गुंपुलो शैर्यिचियेन
गगन भागंबल्ल गालिंचियेन
गल्याणमयुडुन्न कंडुवलरासि
पारिपोवक्युंड बाद्दटेवलपु
प्रणयवनंबुलो बलिपुष्परथंबु
नुम्मेवा। वेवेग तोलि तेवम्म।

भाव।— हे प्राणाधिनाथ। आनंद के नंदनवन में जहाँ प्रणय के झरने झरझर झरते हैं, प्रणय की लताएँ बढ़ती है, प्रणय पल्लव उत्पन्न होते हैं, प्रणय की कलिकाएँ अंकुरित होती हैं, प्रणय के पुष्प विकसित होते हैं, प्रणय की सुगंधित व्याप्त होती है, प्रणय के फल फलते हैं। जहाँ प्रणय ही प्रणय सर्वत्र रहता हो, वहाँ हम दोनों दंपती बनकर प्रणय लीलामृत सरसी मदक तरंगों में, प्रणय के झूलों पर अनुराग से झूलते हैं,

प्रेम गीत गाते, प्रणय शासन को मानते हुए, प्रणय साम्राज्य का पालन करेंगे। आजा आजा।

17) शृंगारनाविलोनि विगुराकुदोन्नै
ये रागजलधिलो नोडयुन्नावियो
ललितजीवबुलै दलिगानलहरि
ये दिव्यसीमल केगुचुन्नावियो
पल्लवपु बूबुलो पलिकम्मलावि
ये वायुपथंबुनंदेगयुचुन्नावियो
तारापथंबुनं बलितदिल्लतिक
ये महातेजमंदेनयुचुन्नावियो
गालिलो जाडलु गनिपेट्टगलुगु
दिव्यमूर्तिकि नीवु देलियदटम्म। —
प्रणयवनंबुलो बलिपुष्परथंबु
तुम्मेदा। वेवेग तोलितेवम्म। —

भाव :— कवि अपने प्रियतम को प्रकृति के विभिन्न तत्वों में से खोज लाने की प्रार्थना भ्रमर से करता है। "हे भ्रमर। तू शीघ्र जा और प्रकृति के कोने कोने में सर्वत्र ढूँढ़ा छिपको हुई वा- चांदिनी में, क्यों दिशाओं में, तारों के समूह में, समस्त गगन मंडल में अन्वेषण कर फूलों के रथ पर मेरे पास तुझे लाना होगा।

18) मधुरामृतंबुलो माधवोकरसमु
वेरि स्वादुरसंबु विम्मेडिचोट
कल्याण रवमुलो गलकंठ रवमु
गलसि रागमु बूय गलयट्टिचोट
गोवलानिलमुलो गुसुम सौरभमु
विरबारि बलपुल वेदजल्लुचोट
रम्यचंद्रिकलतो रत्नाल कांति

मिलितमै मेरपुलु मेरसेडिचोट
मकरंदमुनु जूचि मल्लितलबोक
विमल गानमु जूचि वेरगंदबोक
परिमलंबुल जूचि बमर्पगबोक
नामाट मन्निंचि नायुन्किनैंचि
नामोद मनरुंचि नन्नु गरुणिंचि
प्रणय वनंबुलो वलिपुष्परथमु
नुम्मेद। वेवेग तोलि तेवम्म।

भाव :- हे पवन का पता लगानेवाला मधुकरा शृंगार नहीं तो नव किसलय का दोनों किस राग-जलधि में तैर करा रहा हो, दिव्य गान का मधुर आलाप किस दिव्य दिशा में गूंज रहा हो, पुष्पों का मधुर पराग किस पवन के किस पथ में विलीन हो जाता हो, आकाश में प्रकाशित होनेवाली चमक किस महातेज में मिल जाती ~~है- ओर~~ ~~किस×भकर~~ हो, यह सब तुझे मालूम नहीं क्या? प्रणयवन के कुसुमरथ को शीघ्र ले आना।

19) पद्मालयंबुलो प्रभुडुंडबोलु
वरिकिंचि रायंच ~~नन्नु~~ परग्वेत्तुवुंडे
सहकारवनमुलो सुख उंडबोलु
भावींचि कोरंबु पलु काडुचुंडे
मलस्योम्मल मनोहरुंडुडबोलु
वेरेत्ति कलकंठि पिलुचुचुनुंडे
विरिदोव पोदरिंट किडुंडबोलु
वोल्चि मयूरंबु पुरि विम्पुचुंडे
ब्रककदारल वोयि प्राणनायकुनि
वारिपोककपुंड वहितेवलयु
प्रणयवनंबुलो वलिपुष्परथमु
नुम्मेदा। वेवेग तोलि तेवम्म। —

भाव :— हे भ्रमर। मधुरामृत में मधुराति मधुर रस के मिल जाने से स्वादिष्ट लगने पर उसे देख भ्रम में न पड़ना, कल्याण में कलकंठ का स्वर मिलने पर उस विमल गीत को सुन चकित न होना, कोमल वन में कुसुमों की सुगंधि सूंघकर भ्रमित न होना सुंदर चंद्रिका में, रत्नों की कांति मिलकर चमकने पर उस समय दमक को देख चकित न होना, मकरंद देखकर उन्मत्त न होना, विमल गीत देख बेसुध न होना, परिमल देखकर भ्रम में न पड़ना, चमक दमक देख चौंकित न होना, मेरी बात मानकर, मुझ पर मन लगाकर दया दिखाकर प्रणयवन के पुष्परथ को जल्दी ले आना। विलंब न कर।

20) प्रांगणंबुलो वसिडि दुव्वलुव
वेलुवगा बरचिन चिन्नेलु दोचे
मुन्नोटि तरगलो मुत्याल गेड्गु
सवरिंचि पट्टिन चायलु दोचे
राजमार्गंबुलो रत्नाल रथमु
चल्लगा जरगिन जाडलु दोचे
शांतवनंबुलो संतानतरुलु
कुसुमाल गुरसिन गुरुतुलु दोचे
मुनुमुन्न तुरुमु मोगसाल नुंडि
चिक्कमुंबसिडद्लु चेडले गावोलु
अड्डगु जाडलक बट्टिट चैतरागमुन
केन्नाडि नानायु वेदकिते वलयु
प्रणयवनंबुलो वलिपुष्परथमु
तुमेदा। तेवेग तोलितेवम्मा। —

भाव :— पूर्व दिशा में सुनहला वस्त्र फैला हुआ है। समुद्र तरंगों ने मोतियों का छत्र धारण किया है। राजपथ में रत्नों का रथ बढ़ चला है, शांतवन में कल्पवृक्ष के कुसुम बरसे हैं, इन सब में उनके पदचिह्न हैं। प्राणप्रिय उधर ही गया होगा।

उन पदचिह्नों को देखते हुए चाहे गगन में, चाहे भूमि पर कहीं भी रहे, खोजकर पीछे करके पकड़कर पुष्परथ पर ले आना।

21) गंभीर सागर गर्भंबु नंदु
दिव्य दीपिक लेन्नो दीपिंचुचुंड
नलंबुलेनि नीलाकाशमुंड
शुभ्र दीपमु लेन्नो शोभिल्लुचुंड
वलिविशालंबैन वंककालमुन
मेरगुदीवियलेन्नो वेरचुचुनुंड
गोलदि वेट्टगरानि कुवलयंबडु
प्रणयदीपिकलेन्नो भासिल्लुचुंड
नामेनु मरपिंचि नाकन्नुगप्पि
इंद्रजालमु चेसि येगिनाडिकुडु
मार्कंटबडकुंड ननुचूडकुंड
गोटेये यैंबुडागुनो? चूतुनुगाक।
दीपमालिकलो दिव्यतेजंबु
वकातरेकुलु जाडलुवेट्ट
प्रणयवर्नबुलो बलिपुष्परथमु
तुम्मेदा! वेवेग तोलितेवम्म।

मैं भाव :— गंभीर सागरमें, अनंत आकाश में, सुविशाल पृथ्वी में, असंख्य दीपकों के प्रकाश के समय, कमलों में, मेरे शरीर को भुलाकर आँखों पर पर्दा डालकर जाने या अब जाने में स्वामी कहाँ गया है? मुझे बिना दिखाई पडे, बिना देखे, कहाँ छिपा रहा होगा, देखूँगे। मधुकर! प्रकाश को रेखाओं का अनुसरण कर प्रभु को जल्दी ले आ।

22) आश्चर्यंबु सडंचु नमृतोपंबु
तुरुम्पु कोंडललोन दोरकुनोवेमो?
सार्पंबु दूलिंबु तालिराकुसुराति

दक्षिणोद्यानाल दक्कुनोयेमो?
पापंबु लेडलिंचु मञ्जनदंबु
पडमटिसोम जूपट्टुनोयेमो?
चित्तशांति नोसंगु सिद्धालयंबु
उत्तर भूमुल दोडवुनोयेमो?
त्रोवजूपेंचु विद्युद्दीपकलिक
तोलिमब्बु तेरलो दोचुनोयेमो?
वेनुजूड कुंडगा वेवेगपोयि
विश्वमंतटजूचि वेदकंग वलयु
प्रणयवनंबुलो बलिपुष्परथमु
तुम्मेदा। वेवेग तोलितेवम्म? —

भाव :— रोगों को दूर करनेवाला दिव्यामृत शायद पूरब के पहाडों में मिलता होगा, ताप को शमन करनेवाला दिव्य औषधि दक्षिण के मैदानों में मिलती होगी। पापों को दूर करनेवाली पुण्य नदी पश्चिम दिशा में मिलती होगी, मन को शांति प्रदान करने वाला दिव्य देवालय उत्तर की भूमि में रहा होगा। पथ प्रदर्शन करनेवाला विद्युत दीपिका मेघों की आड में शायद छिपी होगी, बिना पीछे देखे जल्दी जाकर विश्व में ढूंढना, पुष्प रथ पर जल्दी ले आना।

23) आकसंबुननेन नवनियंनेन
जलदपंक्तुलनेन जलराशिनेन
धाराटबुलनेन गौंडलनेन
नेदुरु गाडपुलनेन नैडलनेन
दोवतप्पकपुंड दूलिपोकुंड
मरदंबु क्रिम्दु नी पलवाटु मेरय
प्रणय वनंबुलो बलिपुष्परथमु

तुम्मेदा। वेवेग तोलितेवम्म। —

भाव :— हे भ्रमर। चाहे आकाश में, भूमंडल पर, बादलों में, समुद्र में, काननों में, पर्वतों में कहीं भी प्रियतम रहे, प्रणयवन में स्थित पुष्परथ पर चढ़कर बिना भूले भटके ढूँढकर ले आना।

24) शोभनांगुनि नाकु चूपेदवेनि
विरिदम्मि मेड नीविडिदि गाविंतु
गुणनिनाधुनि नन्नु गूर्चेदवेनि
पोगड पुदोट नीपोलमु गाविंतु
जेलुवु नेचूलनन्नु जेर्चेदवेमि
सुरपोन्नवनमु नी सोम्मु गाविंतु
निखिलेश्वरुनि चेंत निलिपेदवेनि
कल्पवल्लिक नीकु गान्कगाविंतु
वरमसुंदरुनि गूर्चि पाडिननोट
वलिकेद नीमाट प्रणयालमूट
ना माट मन्निंचि नायुन्किनेंचि
नामोद मनसुंचि ननुगरुणिंचि
प्रणयवनंबुलो वलिपुष्परथमु
तुम्मेदा। वेवेग तोलितेवम्म। —

भाव :— अगर तू मुझे अपने प्रभु को ढूँढकर सौंपेगा तो मुझे अभीष्ट भेंट दूँगी। चाहे वह पुष्पसौध हो, चंदन फूलों का कानन हो, देवताओं का पुन्नाग वन हो, कल्पवृक्ष हो दयाकर मेरे प्रभु को मुझे दिखा देना। मैं सबकुछ तुझे भेंट दूँगी।

25) रम्यसौधंबुलो रतनाल दिव्वे
विश्वमंतयु निंडि वेलुगोंदुनुंडे
जेलुवंपु नवारिलो शृंगारकेळ
कुन्द- कुञ्जमंबुल निंडि क्रोगुचुनुंडे

नीलाल पेटिलो नेत्ताकिमरिणे
वनजजाडनुनिडिवलायँचुचुडि
बंगारु कोनलो वन्नीटि चेलमु
भुवनमंतट निडि पोंगुास्बुडे
मनसुलोपल नुंडु मट्टुमायलाडु
चित्तंबु दविचिन चिन्नारिदौग
मँगालनी लो मायलमंदु
हुम्मनि नामोद नुदेनेयेमो?
नानंदमूर्तिये साक्षात्करिंचि
नाग्रोल नुंडिये नवुचुनेगे
बारिपोवक्कुंड प्रायमुनपुडे
परवशत्वंबुचे बट्टलेनैति
नेमूलदागेनो चिपुडेनगानि
दूरमेगक्कुंड दोडिदेबलयु
भ्रमयवनंबुलो वलिपुष्परयमु
तुम्मेदा। वेवेग तोतितेवम्म। —

भाव ।— इस विशाल विश्व में, मुझ में अन्तस्तत्र सर्वत्र प्रकाशित होकर हँसते हँसते मेरा प्रियतम चला गया। परवशता में तथा बेसुध में रहने से मैं उसे पकड़ नहीं पाती। अभी तो वह बाहुत दूर नहीं गया होगा। यहीं कहीं छिपा होगा। भ्रमर। उसे शीघ्र पकड़कर ले आना।

26) कल्याण किनुसेव गाविंचुवेल
नेमिचेयमबोयि चेमिचेयितिवो?
प्रणनायकुनितो भार्गिंचुवेल
नेमिचेय्यगबोचि येमिचेय्यितिवो?
विश्वमोहन मूर्तिन् विचुतिपुवेल
नेमि पाडगबोयि येमि पाडितिवो?

प्रणयस्वरूपुनि प्रार्थिंचुवेल
नेमि वेडगवोयि येमियेडितिनो?
कट्टिनपुर्वंड कट्टिनद्लुंड
पट्टिन हारति पट्टिनद्लुंड
जुट्टिन मट्टुपुलु चुट्टिनद्लुंड
वेडलिपोयिन पट्टि विज्ञानमूर्तिन्
मट्टिनेमि येवेनो मरलिराडावे,
आवेल मोदलुगा ननुनिमिषंबु
नेरोति नुंटिनो येरूगवटम्म।
अवशाने वेसिन यपचारमुनकु
गणनिधानीबिद्लु कोपिंप दगुने?
नावस्थलनेल्ल नामारुगागाग
जीवितेश्वरुनितो जेप्पुदुगानि
प्रणयवनंबुलो बलिपुष्परथमु
तुम्मेदा येवेग तोलितेवम्म। —

भाव :— प्रभु की पूजा के समय कैवतः कोई अपराध बन पड़ा हो, प्रणयनाथ से बातें करते समय क्या कह गया हो, विश्व मोहन मूर्ति का गुणगान करते समय क्या गाया गया हो, प्रणय स्वरूप की प्रार्थना के समय क्या प्रार्थना की हो, फूलों की माला हाथ में ही रह गई, आरती, भेंट, नैवेद्य, तांबूल आदि सब कुछ जैसे रखे थे, वैसे ही रह गये, ज्ञान विज्ञान संपन्न प्रभु जो चला गया है, वह पुनः वापस तो नहीं आ रहा है, विवश विवश स्थिति में मुझ से जो अपराध बन पड़ा है, उसके आधार पर प्रभु का मेरे ऊपर क्रोध करना कहाँ तक उचित है? मेरी दयनीय स्थिति से उसे अवगत कराकर अपने साथ ही ले आना। भूलना मत।

27) साक्षात्कारिंचिन स्वामिनि गाचि
नित्तुवेल्ल चूलोंकिंप नित्तुचुटकटे

निलु वेल्लबुलिकिप निलुवुटकटे
कल्याणनिलयमौ कांतुनिमूर्तिन्
निलुवुटद्दंबुलो निलुपुटकटे
बदरिपादुन वीपु नालेमुजुचि
वेयने वेनुकंज वेयुटकटे
भूरिकिडुवेन भुवनेक विभुनि
चिन्नतामरगद्दे जेर्चुट कटे
प्रेमगीतालतो प्रियुनि पेरेत्ति
गद्गद् स्वरमुनु गोचुट कटे
विश्वोदरुडैन विज्ञान मयुनि
देलकन्नुललोन वेल्चुट कटे
दासिचेसिनयट्टि तप्पेमि गदतो?
आनतिम्मनि स्वामि नडुगुदुगानि
प्रणयवनंबुलो बलिपुष्परथमु
तुम्भेडा। वेवेग तोलितेवम्म। ——

भाव :— प्रभु का साक्षात्कार होते ही सारा शरीर पुलकित हुआ है। कल्याण निलय श्रीकांत का सुंदर स्वरूप दर्पण में लक्षित हुआ है, भ्रम में आलेख्य को देखकर पीछे हटो, भुवनेश्वर सर्वेश्वर को छोटे से सिंहासन पर आसीन किया, प्रियतम को प्रेम गीतों से गद्गद् स्वर से बुलायो, विश्वेश्वर को दीन दृष्टि से देखा, ऐसा करते समय इस दासी से कौन सा अपराध बन गया हो, उसे बताने की प्रार्थना प्रभु से करूँगी। दयाकर प्रणयवन के पुष्परथ पर चढाकर अपने साथ ही ले आना।

अब×तक×प्रियतम×को×दिल खोलकर×नहीं×देखूँगी×तब×तक

28) कम्मारनायुकाचकपुन्न
क्षणमेन गडपंग जालनिनेनु
चितवनायनुकोत्यु वेचिपकुन्न

निमिषमैननु निल्चनेरनिनेनु
दयितानुरूपने तनरकचुन्न
गडैचैन जरिर्यिप गालेनि नेनु
आत्मेशुलो नैक्यमंदकयुन्न
नौर्किंतलेपैन नोपनिनेनु
कौंगु बंगारमै कोरिकलीसगु
जीवितेशुनि बासि जीविंपगलने?
कन पन्नोटि कोलनिलो बडबाग्निबोडमि
गिरिकंदरंपुला गिटनांब पुट्ट
बिगुरूटाकुलनुंडि बिस्पीट लेगसे।

भाव ।— जब तक प्रियतम को दिल खोलकर नहीं देखूँगी तब तक यह बेचैनी कम नहीं होगी। स्वामी की सेवा किये बिना क्षण भर भी नहीं रह सकती। प्रियतम के अनुरूप बने बिना एक क्षण केलिए भी शांति नहीं, आत्मेश से बिना संयोग के और समस्त मनोरथों को परिपूर्ण करने को है। जीवितेश से विमुक्त होकर कैसे रह सकूँगी? जब सरोवरों में दावाग्नि प्रज्वलित हुई, फूलों में से पराग कण उड़ा, गिरि कंदरों में भी आग लगी, नव पल्लवों से आग निकली, वनमालय में तूफान उठा, अंतराल में हलचल मचा, मिथिला के मंदिर में घन अंधकार फैला, तब मधुर मोहन की मूर्ति अदृश्य होगी, विकल स्थिति में जब मैं उँघती रही, तब हे भ्रमर। क्यों तू बड़े मजे से देख रहा है? प्रणय वन के पुष्परथ पर शीघ्र अपने प्रियतम को चढ़ाकर साथ ही ले आना।

२९) शृंगार सरसिलो श्रीमंडपमुन
गुपुमपोठंबुपै गोलुवुंडेनेमो?
कलुव पूवुल इंड गलमुनवेचि
प्रणयमस्लुनि बद्दु गानि
प्रणयवनंबुलो वलिपुष्परथमु
तुम्मेदा। वेवेग तोलि तेवम्म। —

भाव :— शृंगार रस के सुंदर सरोवर के श्रीमंडप के कुसुमों के सिंहासन पर कौवतः प्रभु आसीन रहा होगा। कुमुदों की माला प्रभु के कंठ में डालकर प्रणय स्वरूप को जल्दी लिवा लाना। प्रणय वन के पुष्परथ पो शीघ्र ले आना।

30) अनुराग जलधिलो नमृतकोथिकल
विरिदम्मिदोनेपै विहरिंचुनेमो
कमलदंडंबुनु गरमुलबूनि
मधुरमोहनमूर्तिन् मरलिंपुगानि
प्रणयवनंबुलो चलिपुष्परथंबु
तुम्मेदा। वेवेग लोलितेवम्म। —

भाव :— अनुराग जलधि के अमृत तरंगों को सुविकसित पुष्प के दोने पर कौवतः विहार करता होगा। कमलों के माला को करों में लेकर मधुर मोहन मूर्ति को अपनी ओर अनुरक्त करके पुष्परथ पर प्रभु को शीघ्र ले आना।

31) शांतवनंबुलो स्वर्णसौधमुन
बल्पपुविरिशय्य बवलिंचिनेमो
वेंगलवपूदंडे चेतनुबूनि
यानंदमयमूर्तिन् बरयिंपुगानि
तुम्मेदा। वेवेग तोलि तेवम्म। —

भाव :— प्रशांत वन में स्वर्ण सौध में या सुविकसित फूलों के शय्या पर संभवतः प्रभु सोया होगा। फूलों के माला हाथों में लेकर उस आनंदमय मूर्ति का स्वागत करेंगे। भ्रमर। तू शीघ्र पुष्प रथ पर ले आना।

32) चिद्गगनगिरिलो शृंगाटकमुन
निद्रचेन्नेलबैट निदुरिंचिनेमो?
गुलोकमयमैन ध्रुति मेलगींचि
लोलाविहारनिन लेपुदुगानि

प्रणयवनीबुलो वीलिपुष्परथमु
तुम्मेदा। वेवेग तोलिवेबम्म। —
नेरचूपुजूह वन्नेलु विल्कुनम्म
नेरपल्कुवल्कदे नियलोल्कुनम्म।
अ त्मेशुनकुनिदे यानवालम्म।

भाव :— सुरम्य नगर में, सुंदर उद्यान में, स्वच्छ चाँदनी में भावतः प्रभु सोया होगा। सुश्लोकयुत स्वर और ताल से लीलाधर को जगा दूँगी, भ्रमर। पुष्परथ पर शीघ्र प्रभु को ले आना। देखते समय आँखों से विलास बरसता है। हँसी से चाँदनी बरसती है। बोलते समय मधु बरसता है। आत्मेश के यही लक्षण हैं।

33) नालोनि दीपम्मु नामेनि सौम्मु
ना जालुवाकोड नापूलवंड
नालोड वाड्डु नन्नु मोसगिंचि
नंदनवनमुलो नन्नोंटिडिंचि
सन्नेवरेरुगनि दारिनि बोयि
मेले ननीलाल मेडपैनेक्कि
विरति वेरुगनि बीथुलन्नियुनु
बोर्लिंपुचुंडगा वेवेग बच्चि
चूचुचु चक्कनि चुक्क गुम्पेतलु
नीराजनंबुलीर्दिचिनारंट।
विरिवीणि दोमाट विन्नावटम्म।
कनकांगि नानापु गन्नावटम्म। —

भाव :— मेरे अंतःकरण को दिव्य ज्योति मेरे सौन्दर्य शरीर की संपदा है। मेरा प्रभु मुझे धोखा देकर इस नंदनवन में अकेला छोडकर उस रहस्य पथ से जाकर सुंदर नीलमणि सौध पर चढकर बैठा है जिस से कोई परिचित नहीं। अज्ञात एवं आपत्ति

गलियों की ओर जब वह देखती रहा तब नक्षत्ररूपी कामिनियों ने आरती दी। हे सखी! क्या यह बात सुनी है? हे कनकांगे! क्या तूने मेरे प्रभु को कहीं देखा है?

34) विडिचियु विडुवनि विदुलेल्लगोसि
सम्मितुडुल नूलु दारानगट्टि
मरपिंचि पोयिन मट्टुमायलानि
बट्टि कट्टै दननि पडुगेत्तुचुंड
नेडुगियु नेडगनि योरातबेनुक
देलिसियु देलियनि तेन्नुनबट्टि
यलयिंचि ननुडिंचि यानंदमूर्तिन्
यलबोक वनवीथि नडुगुचुनुंड
नाडुयु वेडुचु नलरुगान्नियलु
तेने पाकमुलीदिचिनारट।
विरिबोणि योमाट विन्नावटम्म।
कनकांगि नानायु गन्नावटम्म। —

भाव :— अधखिले फूलों को तोडकर विदंगत में गूँथकर माला बनायी। मुझे भुलावा देकर अदृश्य हुए जादूगर को पकडने केलिए दौडी। अनिश्चित, सुनिश्चित, परिचित, अपरिचित पथ में दौडकर, थकाकर आनंदमूर्ति स्वयं वन की ओर चला गया। खेलती, मनाती फूलों की कन्याओं ने अपने स्वामी को के मधुपान करने केलिए दिया था। हे कनकांगी! क्या तु ने यह तमाशा देखा है और यह वचन सुना है?

35) संसारमुनु द्रोसि सति नन्नु बासि
मेरियै निट्टुचु चेयुललोन
मगपट्टवारल कडगिनदेल्ल
दनकुलेवनचुंड दानमुचेसि
यभिमान होनुडै यडबुलबट्टि
याकलिदप्पियु ननुमाटलेक

मतिलेनिवारितो माटलुगलिपि
पत्रपुट्टकलतो वलिनैपियुन्न
पूर्वासर्वबुनु बुडिसेत्तकोट्ट
सोलुयु सोलुचु जुर्रिनाडट।
विरिबोणि योमाट विन्न। वटम्म।
कनकांगि नानायु कन्नावटम्मा।

भाव :— गृहस्थी को विनष्ट कर, मुझे पत्नी को छोड़कर, पागल बनकर गलियों में घूमता हुआ, मार्ग में जो दिखाई देते और जो कुछ माँगते उनको अपना सब कुछ दानकर, निरभिमान होकर वन में चला गया और भूख प्यास को भी भूलकर पागल की भाँति पागलों से स्नेह कर पत्तनों के दोन्ने में भरे हुए। मधुरस अजन्नि से भरक कर पान किया था। हे कनकांगी। क्या तूने यह बात सुनी है? कहीं अपने ब्रह्मों नाथ को देखा है?

36) वन मणो मय दिव्य कनक कंदुकमु
ब्रलिानलेबुलो पलवारवैचि
विमलामृतमु तोडि वेंडिपल्लेरमु
किम्मनकुंडगा गिरवाटुवैचि
मुत्तिक्क मुरिपेंबु बुलकिंबु कै मुत्यालपेरु
विनुवोधि केगर्यंग विरजिम्मिवैचि
मणिदर्पणंबु पै मसिबूसि सुडिचि
मरिमरि दनुमाचि मसिबूसिकोनुचु
बंतीगीबिनयट्ट पसिबालुलोल
नौकमूलडागि कूर्चुन्नवाडंत।
विरिबोणि ईमाट विन्नावटम्म।
कनकांगि नानायु गन्नावटम्म। —

भाव :— अत्यंत मूल्यवान स्वर्ण कंदुक को भी बिना परवाह के आग में फेंककर, निर्मल

सुधारस से भरी हुई रजत थाली को फेंककर, मोतियों की माला को आकाश की ओर फेंककर, मणिदर्पण पर आस्त लगाकर अबोध शिशु की भाँति हठ पकडे एक कोने में बैठा हुआ था। सखी। क्या तू ने यह बात सुनी है? कनकांगी। मेरे प्रभु को कहीं देखा है?

37) येल्ल सुस्वरमुल नेकंबुचेसि
येल्लशब्दबुल नेकंबुचेसि
येल्ल यर्थंबुल नेकंबुचेसि
येल्लभावंबुल नेकंबुचेसि
योडलेरुंगक्युंड नुच्चस्वरमुन
~~मुक्कलेरुगक~~ गुक्क द्रिप्पक पाडुकोनुचुन्नवेल
नाकलोनाखु लानंदंबु मीर
जीवलोकेश्वरु श्रीपादमुलनु
बुजाजलुलतोड बूजलु चेसि
प्रेमफलंबुलर्पिंचिनारंट।
विरिबोणि योमाट विन्नावट्टव।
कन~~कांग~~ कनकांगि नानाधु गन्नावटम्म।

भाव :— सभी स्वरों सभी शब्दों, सभी अर्थों और सभी भावों को एक करके, तल्लीन होकर उच्चैःस्वर से जब गीत गाती रही तो देवताओं ने बडे आनंद से लोकेश्वर के पादपद्मों की पुष्पांजलि से पूजा करके प्रेम से फलों को अर्पण किया था। क्या तू ने यह बात सुनी है। कनकांगी। कहीं मेरे प्रभु को देखा है?

38) भीकर जंतु गंभीरनादमुल
गिरिकोन्नियट्टुंड गिरिगह्वरमुन
जलुवराति तिन्नेपै सकलंबु मरचि
नेल बालुनिंबोलि निदुरिंचुचुंड
वेदकुचु नस्दैंचि विपिन सुंदरलु

दिविनुंडि भुविदाङ देसलेल्लांनेडि
डिस्वरंबुल मेलु कोलुपुलु पाडि
निदुर दूलिचि सँदिट वेर्चिपट्टि
मुद्दुलाड्डु मूर्च मुनिगिनारंट।
चिरिबोणि योमाट चिन्नावटम्मा।
कनकांगि नानायु गन्नावटम्मा। —

भाव :— भयानक जानवरों के गंभीर गर्जन से भरी हुई गुहा के संगमरमर के पत्थर पर सब कुछ भूलकर अबोध शिशु की भांति मेरा प्रभु सोता रहा। तब वनदेवियाँ पधारकर जागरण गीत गाते हुए गोद में रखकर खिलाते हुए परवश हो गई थीं।

हे कनकांगी। क्या तू ने मेरे प्रभु को कहीं देखा है?

39) जलधिवीचिकललो जलकंबुलाडि
कोंडनेत्तमुललो गोलाटमाडि
पुष्पकाननमुलो पूबंतुलाडि
येच्चोट नि निलुवक वेल्लड विर्किक विरिगि
तनकु दोचिन रीति दारुलुनुंड
चिमुकवेच्चारो चेनुचेटनीट
यचिरि पाटुन नुन्न पातानिबट्टि
यडुगुबाटिन दोसमीन योद्दु वेट्टि
बाहु पंजरमुलो बंधिचिनारंट।
चिरिबोणि योमाट चिन्नावटम्मा।
कनकांगि नानायु कन्नावटम्मा। —

भाव :— हे सखी। क्या तूने यह सुना कि मेरे स्वामिजन स्वामिजन समुद्र स्नान करके, गुफाओं में कोलाट खेलकर, पुष्पप्रद वनों में फूलों का गेंद खेलकर, आकाश वीथि में आँखमिचोनी खेलकर कहीं भी न ठहरकर स्वेच्छापूर्वक विहार कर रहा था, तब कोई

आकर आगे न बढ़ने की शपथ करवाकर बाहुबंधन में बाँध लिया था। हे कनकांगी। तु ने मेरी स्वामी को देखा था।

40) चूडनि वाडनि शुभमुहूर्तमुन
गट्टनिपेट्टनि कालरंगमुन
वीदनि बैदनि बोम्मलबेट्टि
वन्नेल चिन्नेल चालकालिच्चि
कल्लार चिल्लार याटललोन
मरुगनि तरुगनि माटलाडिंचि
चल्लनि वेल्लनि सरिदिव्वेलुन्न
तेल्लनि नल्लनि तेरचाटुयेसि
येव्वरु व्रायनि इतिहासमुनलु
गपट नाटकमुल गट्टिनाईट।
चिरिचोग चौमाट चिन्नावटम्मा।
कनकांगिनानाथु गन्नावटम्मा। ——

भाव :— अन देखे, अम्लान, शुभमुहूर्त में, बिन बनाये, बिना रखे काल रूपी रंगमंच पर सुंदर खिलौनों को रखकर, सुरुचिर अलंकरण करके छोटे छोटे खेलों में अनंत कालों वार्ताओं को चलाकर, सित असित पर्दे को डालकर ऐसे अपूर्व विषयों को नाटक के रूप में खेलकर दिखाया था जिनको कभी किसी ने नहीं लिखाया। हे कनकांगी। तु ने मेरे स्वामी को कहीं देखा है?

41) कन्नुगप्पिननाटि कडसारिचूपु
तोलुसारि पुव्वुगा वोचेनेव्वरिको?
चेयिवप्पिननाटि चिरुनव्वु मोलक
तोलुकारु मेरुपुगा दोचे नेव्वरिको?
श्री झीन मेन नाशिशिरवासरमु

पन्दुरालिकि वसंतवध्येनम्म
अंधकारावृतंबैननाराति
भाग्यराशिकि बट्टपगलय्येनम्म
इन्नाल्ल परिचयं बिंतगावेसि
लोकेशुडेवरिको लोगिनाडम्म।
विरिबोणि योमाट विन्नावटम्म।
कनकांगि नानाथु गन्नावटम्म। —
पूलरथंबेक्कि पोयेडु वेळ
प्रणयगीतमुलने पाडेडुवेल
किंजुवेणुनादंबु विनिपिंचुवेल
चित्तमा। चित्तमा चेदर पोकम्म।

भाव :— प्रभू भी मेरे लिए जो अंतिम लक्ष्य है वही किसी के लिए नवविकसित फूल ने बदल गया जो मंदहास मेरे लिए अंतिम है वही किसी दूसरे केलिए सौदामिनी के रूप में दिखाई पड़ा। मेरे लिए श्रीविहीन शिशिर ऋतु का जो दिन है वही किसी दूसरी के लिए अंधकार पूर्ण रात्रि बन गयी, वही किसी भाग्यशालिनी के लिए दिन हुआ। इतने दिनों के मेरे घनिष्ट संबंध को मिट्टी में मिलाकर मेरा लोकेश किसी के वश में हो गया है। सखी। क्या तू ने यह बात सुनी है? हे कनकांगी। क्या तू ने मेरे नाथ को नहीं देखा है? जब जब मैं पुष्परथ चढ़कर जाती प्रणय गीतों का आलाप कर प्रभु का वेणुनाद सुनाई देता तब तक हे मन। चंचल न बन। इधर उधर न जा।

42) प्रणयसौधंबुलो वसियुंडुवेल,
प्रेमतो मनसिच्चि पिलिचेडुवेल,
आनंदमूर्तिये याडेडिवेल,
चित्तमा। चित्तमा। चिदरबोकम्म।

प्रेमालयंबुलो प्रियुडाडेडि वेल
प्रेमडोलिकला ~~के~~ प्रियुडगुवेल
प्रेमामृताब्धिलो प्रियुडगुवेल,
चित्तमा। चित्तमा। चेदरबोकम्मा।
कल्याणदुर्गेबु गैकोनुवेल
आनंदसाम्राज्यमेडेडुवेल
विजयाभ्युदयभेरि वेयुचुन्नवेल
चित्तमा। चित्तमा। चेदरबोकम्मा।

भाव :— प्रणय सौध में पति के पधारने पर, मन से पुकारने पर, आनंदमूर्ति बनकर खेलते समय हे मन। चंचल न बन। प्रणयरथ में प्रिय के खेलते समय, प्रेम के झूले में प्रियतम के झूलते समय, प्रेम सागर में प्रणयनाथ के तैरते समय हे मन। इतस्तत: गमन न कर। जब जब मेरे प्रेम मंदिर में प्रभु पधारेगा, आनंद साम्राज्य में अधिष्ठित होगा, दिग्विजय की दुंदुभी बजेगी तब तब मन बिखर न जा और एकाग्र हो जा।

43) समय सूचिकमुगा सकिनाल कुंचे
पयनंपु कोयिलो वेनुडि तिरिगे
फलसूचकमुगा बलुकुलबरिगे
येलमाविगुंपुलो वेदुरेगुदेंचु
नियति सूचकमुगा नीलाल मुरलि
सलिराकुटोटलो तनयंत म्रोगे
क्षेमसूचकमुगा जेमंतिबंति
तोरणांतरमुन हुत्तिलिलिडये
संतोष मोनगूर्चु शकुनंबुलय्ये
सौभाग्यमु फलिंचु समयमेतेंचे
मुन्नता सनमुपेनुडि मानिमुडु
चेरेत्ति चेयेत्ति पिलुवुचुन्नाडु

प्रेमतो मनसिच्चि — पिलुचुचुन्नाडु
सेलविच्चि पंपरे चेलुलार नन्नु। —

भाव :— जाते समय अनेक शुभ शकुन हुए। समय सूचक 'शकुनीपा' नामक पक्षी गगनप्रांत में ऊपर उडा। फलसूचक कोयल आम्रवन में सामने आयी। नियति सूचक नीलवर्ण की मुरली किसलय वन में अपने आप बज उठी। क्षेम सूचक कंडुक ने तोरणों के अग्रभाग में सिर हिलाया। इस तरह कई शुभ संकेत हुए। मेरे सौभाग्योदय की वेला हुआ। उच्च आसन पर स्थित मेरा प्रभु प्रेम से नाम लेकर मुझे बुला रहा है। हे सखियो। मुझे बिदा कर दो।

44) चिगुरुजैंडावदिट्ट चेलि कलकंठि
चेलुवंबु वोप्पिंप शिखरान निलचे
धामर गोडुगुलेत्ति लसंमराति
वेवेग तेरे वेनुवेंक निलचे
फलगुच्छमुलबूनि पडतिराचिल्क
पलुकु तोडेवच्चि पक्कगूर्चुंडे
स्वामि नर्चिंचुपूजाद्रव्य सीमित
नंदंदु चेर्चि नेनायत्तनैति
जगमेल्ल मवमुधा सारंबुगाग
भुवनमेल्लपु गंध पूरंबुगाग
मेरपुडोगल कनुल मिल्लीमद्लु गोलुप
दोलवे तुम्मेदा। तोलवे रथमु। —

भाव :— हे भ्रमर। कोमल किसलय अपने झंडे को लेकर रथ के शिखर पर खडी हुई है। पद्म-पत्र ध्वज को लेकर हंस शीघ्र रथ पर चढकर पीछे खडा हो गया। सुग्गी फूलों के गुच्छों को लेकर बगल में बैठी है। स्वामी के पूजन के लिए विविध सामग्री संजोकर मैं संसिद्ध हुई। हे भ्रमर। जल्दी रथ हाँको।

15) प्रणव पुरंबुलो प्रासादवीधि
वेणुगानरवंबु विनवच्चुचुंडे
कल्याणनगरिकलो कमलालयमुन
वीणाध्वनंबुलु विनवच्चुचुंडे
नुदयरागंबुलो नुत्तुंगशिखर
विश्वगीत रवंबु विनवच्चुचुंडे
परमपावंबुलो प्रांगणसीम
वेदसाधुरवंबु विनवच्चुचुंडे
निखिलेशु नर्चिंचुनिमिष मेतेंचे
कदिलंबु। कदिलंबु। पाणिद्वयंब।
सर्वसाक्षिनिजूड समयमेतेंचे
तेम्मादि। तेम्मादि। नेत्रद्वयंब।
आदिदेवु ग्रहिंचु नवसरंबच्चे
नवधान नवधान मंतरंगंब।
वेदांतमयुजेरू वेलयेतेंचे येतेंचे
भद्रंबु। भद्रंबु। प्राणरत्नंब। —

भाव :— प्रणव नगर की प्रासाद वीथि में वेणुगान का स्वर सुनाई दे रहा है। कल्याण नगर के कमलालय में वीणा की झंकार सुनाई दे रही है। उदय राग के उत्तुंग शिखर पर विश्वमोहन गीत सुनाई दे रहा है। परम पुरुष के प्रांगण में वेदों का सुमधुर घोष सुनाई दे रहा है। ईश्वर की अर्चना का समय हो रहा है। हे चरणद्वय। सावधान। सावधान। सर्वेश्वर को देखने की वेला निकट आ गई है। हे नेत्रद्वय। धीरे धीरे जाग जा। आदिदेव को अपनाने का समय समीप आ गया है। सावधान होना। वेदांतपुरुष के समीप पहुँचने का समय आसन्न हुआ है। हे प्राण। कुशल से रहना। समय आ गया है।

४६) प्रभुनिमूलमुनने पलुकाडनेर्चि
जगदीश्वरुनिवल्ल जालदेरमन,
स्वामिमूलमुनने चीरयिंपनेर्चि
हृदयेश्वरुनिजेर नेडुगदे तनुवु
पत्निमूलमुनने मानिंप नेर्चि
सर्वेशुनाविंप जालदे मनसु,
शिशुनिमूलमुनने बोषिंपनेर्चि
सर्वेशुनाविंप जालदे कनुलु
तनयुमूलमुनने लालिंपनेर्चि
सबुगानपालिंप जालवे कनुलु,
मायलोपल नैत ममतयुन्नदियो।
ममतलोपल नैत मोहमयुन्नदियो।
तारापथंबुलो ततलल मेरसि
विश्वमोहनमैन विभाति वेचे,
इन्दुरिमयनंबुलेकमैनपुडु
निंगिपै प्रेलेने नीलालपेरुग?
हदूवारिवबनंबु लेदुरैनपुडु
विश्वंबुप्राकेने वेन्नेललोग?
पोडोत्लुपत्कुलोक्कटैनपुडु
दिक्कुलनिंडेने दिव्यगानमुलु?
उभयुल हृदयंबु लोरविनयपुडु
परमात्मयैने प्रकृतियंतयुनु?
परमात्मतत्वंबु प्रकृतितत्वंबु
निमिषंबुलो वेल्प निपुणवुगान
नुन्नवुन्नट्लुगा नोक्कमाटलोने
चेप्पवे चेप्पवे चिन्नारि चिलुक।

भाव :— प्रभु की असीम अनुकम्पा से ही मैंने बोलना सीखा, पर जिह्वा जगदीश्वर के गुणों को गाने में असमर्थ है। स्वामी की कृपा से ही मैं ने चलना सीखा पर हृदय ईश्वर के समीप पहुँचाना यह शरीर नहीं जानता। परमात्मा की दया से ही विचारना सीखा पर यह मन कभी भी सर्वेश के बारे में सोचना नहीं। विभु के अनुग्रह से ही देखना सीखा, पर ये नेत्र उस आनंद कंद परमात्मा को कभी नहीं देखते। प्रभु की कृपा से ही सुनना सीखा पर ये कान प्रियतम की कथाओं को कभी नहीं सुनते। प्रभु की माया में कितनी ममता है। उस ममता में कितनी विचित्र महिमा है। जब दोनों के नयन मिल गये, तो विश्वमोहन की विभ्राति दिखाई पड़ी, जब दोनों के वदन सामने आये, नीला भूमि पर आ गये, दोनों की बातें मिल गयी तो पृथ्वी पर चाँदनी छा गयी, दोनों का हृदय एक होते समय सारी प्रकृति परवश बन गयी। हे तोता! तुमने परमात्मतत्व और प्रकृति तत्व को एक ही क्षण में समझाने में समर्थ तू एक ही बात में कही।

48) पुष्पनिकुंज प्रभूतहासंबु
सौरमापूर्ण प्रसन्नहासंबु
मंदाकिनी मृदु मधुरहासंबु
राकानिशाकर रम्यहासंबु
तारकाकोरक तरलहासंबु
विद्युल्लता प्रभा विमलहासंबु
मधुर मोहनमूर्ति मंदहासमुन
नुदयसंबुग लीनमैनट्टुलुंड
मधुरहासंबुलो माधुरी प्रकृति
यानंदमुद्रितंबैनट्टेलुंडे।
मधुर चंद्रिकललो मधुरामृतंबु
मधुरामृतंबुलो मधुररसंबु

मधुररसंबुलो मधुरभावंबु
मधुरभावंबुलो मधुर रूपंबु
मधुर मोहन कला मंडित मेघुंड
मधुरस्वरंबुलो मदिमेलगींचि
कल्याणमूर्तितो गलिसिपोवुदमु
पाडवे कोकिला पाडवे पदमु।

भाव :— मधुर मोहन मूर्ति के मंदहास में पुष्पकुंजों का हास है। सौरभपूर्ण प्रसन्नता का हास है, गंगा देवी का मृदुमधुर हास है, पूर्णिमा की रात का मधुर मंदहास है। ताराओं की तरल हँसी है, सौदामिनी की सरल हँसी है, उस मधुर हास विलास में समस्त प्रकृति आनंदित है। मधुर चंद्रिका में मधुरामृत, मधुरामृत में मधुर रस, उसमें मधुर भाव, मधुर भाव में मधुर रूप, मधुर रूप में मधुर तेज, मधुर तेज में मधुर मोहन मूर्ति विराजमान है। हे कोयल! मधुर स्वर में मधुर गीतों को गाना रटो। कल्याणमूर्ति से लीन हो जायेंगे।

48) ये व्रतंबुलनैन नेगतिनैन
नेतपंबुलनैन नेविधिनैन
प्राणनाथुडु कृपापरतंत्रुडगुट
पुण्यंबुगावटे पुण्युलेल्लनु
जगदीश्वरुंडैन स्वामि योनाडु
प्रेमतो साक्षात्करिंचियुन्नाडु,
पलुकडेमाये, नेबलिकिनवेल
गनुलवाकिन प्रेम गनिपट्टलेदो?
चूडडेमाये, ने जूचिनवेल
वेदविनिम्मिननन्नु वीक्षिपलेदे?
नव्वडेमाये, नेनव्विनवेल

भावमापिन लौन वोरिंपलेवा?
प्रणयातियेपुनि भावनामयुनि
दर्शनंबु लभिंचि धन्यत मिंचे
ननुराग रसकटाक्षावलोकमुल
वोडगोंचि नेम्मेनु पुलकिंचुचुंडे,
माणिक्यमयमूर्ति मनपज्जनुंड
संजकैंजायलो जरियिंपनेल?
सिद्धौषधमु मनचेंतनेयुंड
घोराटवुललोन ग्रुम्मरनेल?
दिव्यांजनमु मनदृष्टिलोनुंड
दीपमालिकललो द्रिमम्रनेल?
विज्ञानघनमात्म वौधिनेंदुंड
मंत्रकोशमुललो मसलंगनेल?
भ्रांतिलो बडिवेरिपडनेटिकम्म।
चित्तमा। ना तोड वेरि रावम्मा। —

भाव :—किसी व्रत के द्वारा, किसी ढंग से किसी तप के द्वारा, प्रणयनाथ के कृपा पात्र होजाना ही स्त्रियों का परम पुण्य है, धर्म है, सर्वस्व है। जब जगदीश्वर मेरा स्वामी आज प्रेम से प्रत्यक्ष हुआ है। पता नहीं, मेरे बोलने पर भी बोलता क्यों नहीं, मेरे नेत्रों के प्रेम को समझता नहीं, मेरे देखने पर भी देखता क्यों नहीं, अधरों के मंदहास को देखना क्यों नहीं। मेरे भावों को परखता क्यों नहीं। प्रणयाधिपति प्रभु का दर्शन तो हो गया है। धन्यातिधन्या हो गई। अनुराग पूर्ण नेत्रों को देख मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है। जब माणिक्यमयमूर्ति बगल में रहा तो संध्या की छाया में हमें चलना क्यों? जब सिद्ध औषधि पास में है तो घने जंगलों में घूमने की जरूरत क्यों? जब दिव्यांजन हमारी दृष्टि में है तो दीपमालिकाओं में इधर-उधर ढूंढने की

क्या जरूरत है।

विज्ञान रूपी धन जब आत्मा में हो है तो मंदों के समूह में घूमता क्यों? हे मन। भ्रम में न पड मेरे साथ हो आना।

49) पसुपुरासिनयट्ट्ट भवसूत्रमुन
सौभाग्यमयरेख सीधिंपबडियै
मेरुगुवेट्टनयट्ट्ट मिंचुटद्दमुन
नमृतसुंदरमूर्ति हरितंपबडियै
विद्दिव तोर्चिन यट्ट्ट विब्बे कंबमुन
विज्ञान दीपंबु वेलिगिंपबडियै
गोदलु तोर्चिनयट्ट्ट धौटगुम्ममुन
जय केतनंबु सौख्यापिंपबडियै
विज्ञानकोमलो विहरिंचुटकैटे
मानंदवीथिलो नाडुटकैटे
बरमधामंबुलो बाडुटकैटे
निंक्कोरस्टक्कु नोकेमि कावलेने?
मलयमारुत मृदुमधुर वीचिकल
नमृतवल्लिक नाट्यमाडुचुंडे
मलयमारुत मृदुमधुर रागमुन
पाडवे कोकिला। पाडवे पदमु। —
इकांतसेवलो नीवेलवाक
बह्मासनंबुन बडतिकडोर
श्रोपुण्ययोग संसिक्त वेकुर
वैटिकि वाडिनदे पाटयग्ये। —

भाव :— हे कोयल। हल्दी से पूर्ण सुमंगलसूत्र सौभाग्य रेखा में बाँधी गयी है। प्रकाशपुंज दर्पण में अमृतमयमूर्ति अंकित है। सुसज्जित स्तंभ में विज्ञान दीप प्रज्वलित है।

किले के सिंहद्वार पर दिग्विजय की पताका फहराया गया है। विज्ञान की सीमाएँ विहार करने के अतिरिक्त परमधाम में जाने के अतिरिक्त और क्या चाहिए। मलयमारुत के मृदु मधुर सीधों में अमृतकली नृत्य कर रही है। मलयमारुत कोमल राग में है कोयल। गीत गा।

50) पौलुपुदकिन पौष पूर्णिमारजनि
वरशारदचंद्रिका वसनंबुदोडिगे,
नवाषेसोकिन याषाडसरसि
प्रावृद्घनातपत्रच्छायनिलिचे,
चेलुवैविदुन्न शैशिरलतातन्वि
ललितवसंत विलासंबुगांचि
नौलपुदेरदापे नेलमानिकंबु
कौमुदीप्रभललो गलुवलु विरिसे,
जिगुरुगोडलदाटे जिन्नारितेटि
यलरूवालिक्लिलो नमृतंबुत्रुरिसे,
वेडिकन्नीटिलो वेन्नेलवेलुगु
पोडसूपिनिलुवेल्ल बुलकिंपजेसे,
निद्दुर्पुबोगलली निमृततेजंबु
पोडसूपि प्राणंबु बुलकिंपजेसे,
नित्यनिर्मलतेजु निन्नु ध्यानिंचि
नित्यमोहनमैन नीसेवजेसि
नित्यसत्यानंद निलयुंडवैन
हृदयेश। निनुगोरि चिन्नारि कैन
सवलुलंदरिलोन चरितार्थनैति —

भाव।— सुंदर पौषमास में, पूर्णिमा की रात ने शुभ्र श्वेत चंद्रिका वसन को धारण किया। आषाढ़ मास का तटाक वृक्ष की छाया में रहा। शुष्क एवं ठंडल शिशिर के

बादल सभी ने बसंत के विकास को देखा। कुमुदों का विकास हुआ। गरम आँसुओं पर चाँदनी की रोशनी पडने से सारा शरीर पुलकित हुआ। निःश्वासों में दिव्य तेज फैलाकर प्राणों को पुलकित किया। हृदयेश। मैंने तेरा ध्यान किया। नित्यनूतन तेरी सेवा करके नित्य सच्चिदानंद तुझे चाहकर कम से कम इतने दिनों के बाद स-सपत्नियों में सौभाग्यशालिनी बने।

51) आनाडु मंदिरोद्यानांतरमुन
विरियबूसिन माधवीनिकुंजमुन
नीकभिमुखमुगा नै गूर्चुंडि
नीदिव्यलीला विनिर्मलगीति
बलुमारुवीणलो बलिकिंचुचुंड
दयलेक ननुवीडि तरलिपोयिति,
हृदयेश। नीविच्चगिंपनिनाडु
बंगारु वीणतो बनियेमि नाकु? —

भाव। — हे हृदयेश। उस दिन जब मंदिर के उद्यानवन में सुपुष्पित माधवी कुंज में तेरे सामने बैठकर तेरे निर्मल गीत को वीणा पर बजाती रही, तब निर्दय होकर मुझे छोड गया था। जब तुझे पसंद नहीं था तो उस सोने की वीणा से मुझे क्या काम है?

52) कोटिकिनोकोटिलोन गन्नुलुमूसि
तेन्नेरुगकयुंड दिरिगोंडवेल
गंभीर जलधिलो गन्नीरुनिंचि
मूलंबु देलियक मुनिगेडिवेल
दावानलमुन संतापाग्निगेरल
विरतियरुगक वेगेडिवेल
झंझानिलमुन निश्वासंबुनिंचि
तोलिदिक्कगनलेक सूलेडिवेल
विजनालयंबुलो विषतुल्यमैन

नवशाने येमिथुनरथनिवेल
विफल प्रयत्नाटवीमध्य
नाशाफणुल जिकि पडलेडिवेल
सततनिराशाग्नि शैलगर्भमुन
नपरितृप्तिज्वाल नलाडुवेल
गनुलारगाँचुचु गाननियद्लु
वीनुलार गाविंचु विनरानियद्लु
येल्लवानि नेरिंग येरुगानियद्लु
ना मोरालिंचुचु ननुगाननद्लु
गोदासि नेडजेसि उन्मात्तदाक
हृदयेश। दयमालि येटुलुंटिवय्या। —

भाव :— हे हृदयेश। घन अंधकार में आँखें मूँदकर अपरिचित मार्ग में घूमते समय, गंभीर समुंदर में आँसू भरकर डूबते समय, आग में शैलपाग्नि के मिलकर जलते समय, झंझानित में निःश्वास भरकर दिशा के अपरिचित समय, निर्जन प्रदेश में स्मृतियों के स्मरण आने पर विवश हो कुछ भी न जानने के समय विफल प्रयत्न रूपी वन मध्य में आशारूपी साँपों के रहते समय, सदा निराशा रूपी पर्वत गर्भ में असंतृप्त रूपी ज्वाला उठते समय, आँखों से देखते हुए अनदेखे, कानों से सुनते हुए भी अनसुने की तरह निष्ठुर होकर मुझ दासी को छोडकर कैसे रह सका?

53) ई शैलवाहिनि यिंकि पोर्कुंड
नमृतार्णवमुजेरे नीलियेजालु
कोमल्ले विरिदंड यैडिपोवुंड
नमृतमूर्तिवहिंचि नीलियेचालु
कालजीमूतु निर्गतवारिकणमु
कमनीय नवमौक्तिकमैनयद्लु

पँकनिमग्न दुर्बलकीटकँबु
कल्याण विजयशंखबैनयट्लु
नापुण्यमुनजेसि ना जीवितेश।
नीदर्शनमुजेसि ने धन्यनैति ——

भाव :— यह अ जीत सरिता विना सूखे अमृर्णव×में अमृतार्णव में जा मिली, यही बहुत है। इस फूलों की माला को विना सूखे ही प्रभु ने इसे धारण किया — है यही पर्याप्त है। बादल से जो बूँद निकली और सुंदर मोती जैसी बनी। समुद्र के भूखे गर्भ में निर्मल बहुमूल्य वस्तु जैसे बना। पंक निमग्न दुबल कीटक कल्याण विजय शंख जैसे बना हो, तेरे दिव्य संदर्शन सौभाग्य से मैं धन्या बनी और कृतार्थ हो गई।

54) कृष्णेश
यो मोगा विरियैचि इन्नाल्लदाक
दंडगुर्चुटकिँत तडयुटयेल?
योपँडु पँडिंचि चिन्नाल्लदाक
नारगिँचुटकिँत पालयमेल?
यो गौतिक रचिंचि यिन्नाल्लदाक
सरिगवाडुटकिँत जालिबदेल?
योशारिकनुपँचि यिन्नाल्लदाक
माटनेर्पुटकिँत मसलुटयेल?
येमैन नेटुलैन निष्पटिकैन
निखिलेश। नीकृपान्वितकटाक्षमुन
गल्गामृतमुनीदि कम्मनिमिसिमि
करुणामधुवुलीनि कल्याणवीथि
करुणावनमुलीनि धनकल्पशाखि
कन्नुलु चल्लगा गनुगोनगोट
कृष्णेश। नामाम्य मेमात्यमव्य।

भाव :- हृदयेश! इस कली को विकसित कर माला में गूँथने केलिए इतनी सोच क्यों? इस फल को पकाकर खाने में इतना विलंब क्यें? इस गीत की रचना कराकर इसे गाने में इतनी देर क्यों? इस शुक का पालन करके बोलना सिखाने में विलंब क्यों? कुछ भी हो, कैसे भी हो, कम से कम - अब तेरी कृपाकटाक्ष मुझ पर पड़ी है। हे अंजलेश! तेरे करुणामृत की मधुरिमा करुणा रूपी मधु में मिट्टी का टुकड़ा, करुण रस का कल्याण औका, कल्याण वन की - डोली को आँखों पर देख सके, हाय! मेरा भाग्य कैसा भाग्य है।

55) मेरुगुल सरिगंचु मेघांबरंबु
नेनरूनेयिंचि नी किच्चिनारव्व।
कुसुमपीठमु शारि कुवुलंबुतोड
नेवरु मेयिंचि नी कि च्चिनारव्व?
नवमणीमय दिव्य नक्षत्रमाल
नेवरल्लूपिंचि नीकिच्चिनारव्या।
निरवधिक मनोज्ञ नीलसौधंबु
नेवडु कट्टिंचि नीकिच्चिनारय्या?
अविवेकमुनजेसि यडुगुटेकानि
यात्मसंतृप्तिके यनुटये गानि
परमाणुवुलकंटे बरमाणुवैन
यतिलोकमूर्ति! नीकंधयेटिकय्या?
महदार्यमुनकंटे महादर्भमैन
हृदयेश! नीकवि येपाटिकय्या? —

भाव :- हे हृदयेश! प्रकाशपूर्ण आँचल के मेघांबर को बुनकर किसने तुझे दिया? रम्य नव्य नक्षत्र माला को गूँथकर किसने दिया? अनंत मनोज्ञ नीलमणि सौध को बनवा कर किसने दिया? मूर्खता से पूछ रही हूँ। आत्मतृप्ति के लिए कह रहा हूँ। परमाणु

से भी कम परिमाणवाले तुम दिव्यमूर्ति को यह सब क्यों? महान से महानतम तुझे यह सब कुछ महत्वहीन है न?

56) हुक्वेश। ×नोम्कमियेबाटिकम्म।
भुवनंबुलन्नियु बोज्जलोनुन्न
निखिलेश। नीपज्ज निलुवगगिटि,
संपूर्णलोकैक साक्षियैयुन्न
शुभतेज। नीमूर्ति चूडगागिटि,
आगमांतोक्तुल कंदगारानि
महिमाढ्य। नी तोड माटाडगिटि,
अखिलंबुनकु नींटयंटक्युन्न
निर्विकारुनिनिन्नु नेर्वोदगिटि,
पालसंद्रबुतो बल्वैलंबुनकु
क्षीरनीरन्याय सिद्धिपटिल्ले,
अतिपिपासाशांति कमृतंबुदारके
मतनु तापनिवृत्ति कौषदंबोदवे।
वनुवेल्लवुलकिवे दन्ययत्वमुन
नंतरंगंमुपौंगि क्रम्मकग नानंदगरिम
वहियुंटिनवाने भवदीलकमुन
नन्नुद्धरिंपवे ना जीवितेश? —

<u>भाव</u> ।— सभी लोगों को गर्भ में निहित है निखिलेश। तेरे पार्श्व में खड़ी तो हो सकी। सब लोकों के साक्षी स्वरूप तेरे शुभ तेज को तो देख सकी। वेदों के लिए अगम, महिमा स्वरूप तुझ से बोल न सकी। सब वस्तुओं से निर्लिप्त, निराकार तुझे देख तो सकी। क्षीर समुद्र से संबंध जो उन्होंने क्षीर नीर न्याय की परम सिद्धि मिली। अत्यंत प्यासे को अमृत मिला है। ताप निवारण के लिए दिव्य औषधी मिली है। आनंदातिरेक से

शरीर रोमांचित हुआ। अंतःकरण में आनंद उमड पडा। अवश्य ही तेरे पास पडी रहो। हे जीवितेश्वर! मेरा उद्धार कर।

57) चोमनै प्राकेति चिगुराकुदाक
नंदनवातिपंडरयेनजिक्के
विहांगनै येगलिति निनुतोगिदाक
नाफलिनडगिंचु नमृतान्नमोदवे
नणुचुने दिरिगिति नाशांतरमुल
नोगसिनलनुवेल्ल सुरभिलंबध्ये
जैपनैयोदिति सिंधुसप्तकमु
जेरितिनेद्दुलो श्रीधाममुनकु
नायासमु फलिंचे नाशलदोरे
नामोदमु लभिंचे नभिमतंबोदवो
नालोक रमणीयमैन नीमोमु
आनंदविकसितंबैन नीमोमु
अमलतेजोमयंबैन नीमोमु
कनुगोंटि गेकोंटि गेवल्यपदमु —
प्रणयैक निलयमौ भवदाननमुन
मलयुचुंडिन शांत मधुरतेजंबु
वेलयुचुंडिन दिव्य विमल तेजंबु
नटियिंचुचुन्न यानंदतेजंबु
तिलकिंचुवारिके तेलियुनुगानि
बुद्धिमंतुलकेन बोधलकेन बोधलकेन
गविवोग्रस्लकेन धनुलकेन
निन्निमाटलिकेल येव्वारिकेन
नितरुल कभाग्य मेक्कडिदय्य?
कोनियाडवलेनन्न कोविंपिगानि

भक्त भावलोपलनादि्ट पलुकुले लेवु
तेलिसिकोवलेनन्न दीक्षयेगानि
बुद्धिपर्कताट सुप्रबोधमै लेदु,
वर्णिपवलेनन्न वांछयेकानि
कविकर्ताटिभाव गरिमये लेदु।

भाव :— यद्यपि मैं चींटी हूँ पर पल्लव के अग्रभाग तक पहुँची। जो अप्राप्य अमृत फल है वह करतलामलक हुआ। चिडिया बनकर आकाश तक उडी। भूख के मिट जाने तक भोजन मिला। अणु होकर भी भूमि सभी दिशाओं में संचार किया। सारा शरीर सुगंधित हुआ। मछली होकर सप्त सागरों में तैरी। अंत में किसी तरह धाम में पहुँची। मेरा श्रम फलीभूत हुआ। मेरी आशाएँ फली। मेरा अभीष्ट सिद्ध हुआ। मेरे अंतर में स्थित रमणीय तेरा वदन आनंद से आनंदित वदन, निर्मल तेज से संपन्न वदन देखा। और कैवल्य पद पाया। प्रणय का एकमात्र निलय जो तेरा आनंद है उस में जो शांत एवं मधुर तेज, दिव्य विमल तेज, आनंद तेज, सौभाग्य तेज, प्रति प्रतिभासित्त हैं, उनके देखनेवालों के ही समक्ष में आते हैं। बुद्धिमानों, पंडितों, कवीश्वरों, महानों, यहाँ तक क्यों कि किसी दूसरों के लिए वह भाग्य कहाँ? दिल खोलकर प्रार्थना करने की कामना तो रहती है। भाषा में इस प्रकार के वचन ही नहीं। मालूम कर लेने की दीक्षा तो रहती है और बुद्धि तो रहती है। वर्णन करने की चाह तो रहती है। कविता के लिए उतनी भाव गरिमा तो नहीं।

58) अस्फुटचंद्रा तपांतरालमुन
भक्त स्वनंबुलो प्रवहिंचुचुन्न
निर्मलतम वाहिनी गर्भसीम
वरलि पोवुचुन्न तरणि लोनुंडि
वनुवेंचु विरहिणी संगीतमंदु

नीरूप्रेममयूख मुंडुनुगाक
रमणीयमंदिराराम देशमनु
कमनीयनवमल्लिका निकुंजमुन
गलकंठस्त्तमुनो गलयिक गाचि
दूरंबुनंदुंडि दोतेंचुचुन्न
नवमनोज्ञ वीणागानलहरि
नोक्किंत सुखलेशा मुंडुगुगाक
नाकलोकंबुलो नंदनभूमि
वारिजातंबुल पज्जलनुंडि
वल्लिकाडोलिका वरखेलनमुन
वेंतालईगुचु वाडुचुनुन्न
गीर्वाणकांतक गीतामृतमुन
नोक्किंतयानंद मुंडुनुगाक
सुखकरंबगुगाक येंदमौगाक
दिव्यतेजंबुतो दोटुसेपुटकु
प्रकृतिसौंदर्य मेपाटिदि नाथ?

भाव :— अस्फुट चंद्रमा के अंतराल में से मव्यध्वनि से ध्वनित निर्मलतम वाहिनी गर्भ में से, झरनेवाले झरने में से, आनेवाली विरहिणी गीत में, एक प्रेम की किरण रही होगी। रमणीय मंदिर के प्रांगण में, कमनीय मल्लिका कुंज में, कोयल के स्वर में सुदूर से आनेवाली वीणा के स्वरालाप में थोडा सा सुख मिलता होगा। स्वर्ग लोक में, नंदनवन में, परिमल फूलों के पार्श्व में, लताओं के झूलों पर, स्वर्ग से झूलनेवाली देवियों के गाने में जरा सा आनंद रहा होगा। यह सब सुखमय, शुभप्रद, आनंदप्रद होगा। पर तेरे दिव्य सौंदर्य से प्रतिद्वंद्विता करने प्रकृति सौंदर्य कहाँ तक ठहरता है?(नहीं)

59) ~~प्रकृतिसौंदर्य मेपाटिदि नाथ~~

निरुपम माधुरी निलयमैयुन्न

निर्मलप्रेमैक निलयमैनुन्न
नीपै मेमलोकिनपूपु
निरुतुल सौंदर्य निलयमैयुन्न
नी मोमुवम्मिपै निलचिनयूपु
नी पादयुगमुपै निलचिन मनसु
नीदिव्यसन्निधि निलचिन मेनु
निनुवीडिपोरग नेर्चुनटय्य?
हृदयंबु लोपलि हृदयंबुलोन
मुद्रितंबय्ये नीमोहनमूर्ति
कन्नुललोपलि कन्नुललोन
बिंबितंबय्ये नीमोहनमूर्ति नी प्रेमैकमूर्ति
श्रुतिवीधुलंदलि श्रुतिवीधुलंदु
गोचरंबय्ये नीगुप्तनामंबु
कोयल्पलुकुलतो नीरेणुकणमु
कोमलत्वमंदेनसिन दाक
कोप्रेमरसमुतो नीयल्पबोधि
को सुधार्णवमुनं देनसिनदाक
को परीमलमुतो नीकप्पुरंबु
को महानिलमुनं देनसिनदाक
कोचिन्निनुडुलतो नीप्रेमगीति
को दिव्यनाद मंदेनसिनदाक,
प्राणेश। नी दिव्य पादपद्ममुल
भाविंचि सेविंचि भक्ति पूनितु। —

भाव ।— अतुलनीय निर्मल, अत्यंत सुंदर तेरे मुख पर टिकी हुई मेरी दृष्टि तथा मेरे पादपद्मों पर लगा हुआ मन तुझे छोड़कर जाना चाहते हैं क्या? अंतःकरण में तेरी मुग्धमोहनमूर्ति छायी हुई है। आँखों के अंदर तेरा प्रतिबिंब अंकित है। तेरा नाम

कानों को सुनाई देता है। मैं अपनी इस अल्पशक्ति से तेरे समीप पहुँचने तक तेरे पादपद्मों की पूजा अत्यंत भक्ति भावना से करती रहूँगी।

60)— सर्वलोकेश। यी सालभंजिकनु
नीकेलिगृहमंदु निलुवगानिम्मु
भुवनसंत्राण। यी पुष्पवल्लिकनु
नीपूलतोटलो निलुवगानिम्मु
भक्तमंदार। यी बालशारिकनु
नीपंजरंबुलो निलुवगानिम्मु।
कल्याणधाम। यी कनकपीठिकनु
नीपादमुलपोंत निलुवगानिम्मु।
अणुवुलुमोदलु ब्रह्मांडंबुदाक
सर्वजीवुलकीवु समुडवुगान
नी दर्शनमुचेय ने गोरिकोंटि
नी पूजचेयंग ने गोरिकोंटि
नीमाटलालिंप ने गोरिकोंटि
नी सेवचेयंग ने गोरिकोंटि
दयतोड विलकिंचि दास्यंबोसगि
नन्नेलुकोनुमय्य ना जीवितेश।

भाव :— हे हृदयेश। इस सालभंजिका को तेरे केलीगृह में रहने दो। इस पुष्पलता को तेरे उद्यानवन में रहने दो। हे भक्तमंदिर। इस शुक को तेरे पिंजडे में रहने दो। हे कल्याणधाम। इस सुवर्ण की मंजूषा को तेरे भावों के समीप रहने दो।

अणु से लेकर ब्रह्मांड तक समस्त जीवों के लिए तू ही ईश्वर है। समदर्शी है। इसीलिए तेरे दर्शन की प्रतीक्षा में हूँ। तेरी बातों को सुनना चाहती हूँ। तेरी सेवा करना चाहती हूँ। कृपाकरके मुझे अपनी बनाकर मेरा उद्धार कर।

* * *

(आ) सहायक ग्रंथ-सूची

(आ) सहायक ग्रंथ-सूची

क) हिन्दी के ग्रंथ :-

1) आधुनिक काव्यधारा

2) कबीर ग्रंथावली

3) गुरुदेव स्मृति-ग्रंथ

4) गीतांजलि का हिन्दी रूपांतर

5) मीराबाई की [illegible] पदावली

6) रवींद्र का जीवन दर्शन

7) संत कबीर

8) हिन्दी का प्रमुखवाद

9) हमारे आधुनिक प्रतिनिधि कवि

10) हिन्दी साहित्य-कोश

ख) तेलुगु के ग्रंथ :-

1) आन्ध्र साहित्य संग्रहम

2) आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहमु

3) आन्ध्र वाङ्मय चरित्र — डा० दिवाकर्ल · वेंकटावधानि

4) आधुनिक आन्ध्र कवितारीतुलु

5) आन्ध्र कवुल चरित्र — मधुनापंतुल सत्यन्नारायण

6) तेलुगु साहित्य का इतिहास

कृ० प० उ०

<u>तेलुगु के ग्रंथ</u> :—

7) पच्चीस वर्षों की तेलुगु कविता — भारती

8) विज्ञान सर्वस्वमु

9) सारस्वत व्यासमंजरि

<u>ग) लेखक की कृतियाँ</u> :—

1) एकांतसेवा

2) काव्य कुसुमावली — प्रथम भाग

3) वृन्दावन

4) भावसंकीर्तन

5) मातृमंदिर

घ) 'रवींद्र का जीवन-दर्शन'
(Tagore's Philosophy — Radha Krishnan)

* * *